राय पिथौरा

राजपूतकालीन वीर-शिरोमणि सम्राट् पृथ्वीराज चौहान के जीवन से सम्बद्ध ऐतिहासिक नाटक

भगवती प्रसाद वाजपेयी

मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशन्स्
नई दिल्ली

राय पिथौरा

राजपूतकालीन वीर-शिरोमणि
सम्राट् पृथ्वीराज चौहान के जीवन से सम्बद्ध
ऐतिहासिक नाटक

Jyoti Kutwal
class H.S. Part IInd

भगवतीप्रसाद वाजपेयी
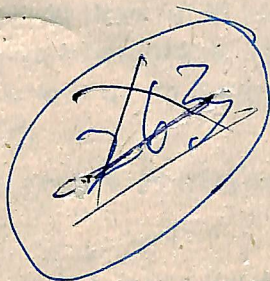
मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशन्स
दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२

प्रकाशक :
मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशन्स
१, अन्सारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-११०००२

संस्करण – १९९३

मुद्रक : एफिशिएन्ट आफसैट प्रिन्टर्स, नई दिल्ली

RAI PITHAURA
by Bhagwati Prasad Vajpai

दो शब्द

इतिहास की वाणी ऐश्वर्य-भोग के क्षेत्र में, राजन्य-वर्ग की पारस्परिक स्पर्द्धा और उत्पीड़न के क्षेत्र में पीड़ित मानवता के क्रन्दन और चीत्कार की वाणी है। प्रत्येक योद्धा वीर होता है, किन्तु प्रत्येक वीर इतिहास का पृष्ठ नहीं बन सकता। विक्रम की द्वितीय सहस्राब्दी में भारतवर्ष जिन खण्ड-राज्यों में विभक्त था, उनके अधीश्वरों में वीर योद्धाओं की कमी नहीं है। पर ऐसे सेनानी और महाराज कितने हैं जिन्होंने इतिहास का एक पृष्ठ नहीं अपितु अध्याय घेर रक्खे हों ?

महाराज पृथ्वीराज ऐसे ही नर-रत्नों में से थे। वीरता में तो अपने जीवन-काल में अद्वितीय थे ही; पर मानवता के पुजारी होने के नाते भी वह एक आदर्श महापुरुष थे।

इस नाटक में मैंने महाराज पृथ्वीराज के जीवन के सर्वाङ्गीण स्वरूप का चित्रण करने की चेष्टा की है। यहाँ तक कि उनकी दुर्बलताओं की ओर भी स्पष्ट इशारा कर दिया है। तथापि यह मानना पड़ेगा कि उत्कट प्रजापालक, मूर्धन्य क्षमाशील और निर्विकार, अशरण-शरण होने के नाते उनका जीवन भारतीय इतिहास का एक अमर अध्याय है।

चिरकाल तक हिन्दी-नाटक का अन्त: स्वर प्रमुख रूप से भावात्मक रहा है। किन्तु किसी काल के इतिहास का चित्रण—सो भी नाटक के रूप में—कोरा भावात्मक हो तो फिर विचार-प्रधान नाटककार के लिए गति कहाँ है ? कदाचित् इसी अन्त:[illegible]ला धारणा के कारण यत्र-तत्र विचार-कथन और मनोमंथन दृष्टिगत हो, तो आश्चर्य नहीं।

आशा है, नाटककार का रचनात्मक मनोयोग पाठक और प्राध्यापक दोनों को तृप्ति देगा।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

सूची

पुरुष-पात्र

पृथ्वीराज	: सम्राट्
सोमेश्वर	: युवराज पृथ्वीराज के पिता। अजमेर के महाराज
अनंगपाल	: युवराज पृथ्वीराज के नाना। दिल्ली के महाराज
जयचन्द	: कन्नौज के महाराज
चन्द	: राजकवि और पृथ्वीराज के बाल-सखा
काका कान्ह	: पृथ्वीराज के काका। महाराज सोमेश्वर के अनुज
कैमास	: अजमेर तथा दिल्ली में कुछ काल तक महामात्य
सुमन्त	: कन्नौज के महामात्य
जैतराव परमार	: महामात्य (कैमास के पश्चात्)
समरसिंह रावल	: चित्तौड़-नरेश। पृथ्वीराज के बहनोई
चामुण्डराय	: सामन्त
मुहम्मद ग़ौरी	: ग़ज़नी के सुलतान
हुसेनख़ाँ	: मुहम्मद ग़ौरी के भतीजे
सुन्दरदास	: हुसेनख़ाँ के प्रतिनिधि
लक्ष्मणराव	: सामन्त
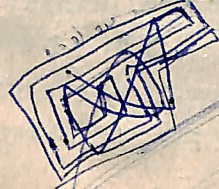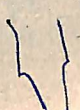
नरोयण	:	मुहम्मद गौरी का गुप्तचर और महाराज पृथ्वीराज का लिपिक
माधवभट्ट	:	मुहम्मद गौरी का गुप्तचर
चन्दपुण्डीर	:	सामन्त
प्रेमांकुर	:	कन्नौज का एक चित्रकार
गोविन्दराय	:	सामन्त
निड्डुरराय	:	सामन्त
गोयन्दराय	:	सामन्त
हम्मीरराय	:	सामन्त और देशद्रोही

सुधीर, गोपाल, शास्त्रीजी, राजगुरु, रामानन्द ज्योतिषी, जंगम, दण्डनायक, प्रतिहारी आदि।

स्त्री-पात्र

कमलादेवी	:	पृथ्वीराज की माता
पृथाकुमारी	:	पृथ्वीराज की बहन
इच्छारानी	:	पृथ्वीराज की पटरानी
संयोगिता	:	पृथ्वीराज की अन्तिम रानी
सुनयना	:	संयोगिता की सखी
वीणा	:	संयोगिता की सखी
जग्गो	:	इच्छारानी की परिचारिका
जयपत्ती	:	इच्छारानी की परिचारिका
चित्ररेखा	:	हुसेनखाँ की प्रेयसी
कर्नाटकी	:	पहले पृथ्वीराज की राजनर्तकी फिर जयचन्द की

प्रतिभा, रोहिणी, सुभद्रा, तोरणा, प्रतिहारी, प्रहरी आदि।

प्रथम अंक

प्रथम दृश्य

स्थान--नागौर का राजोद्यान।

समय--प्रातः काल आठ बजे--लगभग बारहवीं शती ई. का मध्य।

[अजमेर-नरेश महाराज सोमेश्वर का एक सुषमा-निकुञ्ज। लता-पल्लवों से आच्छादित, चारों ओर छाया हुआ एक गोलाकार गगनचुम्बी वितान। प्रवेश के लिए द्रुमों और लताओं से आवृत एक मालञ्च, भीतर नाना क्यारियों में विभाजित देश-देशान्तर के पुष्प-पादप। पल्लवों के शत-शत मिले-जुले प्राकार और वर्ण। कहीं-कहीं हरी-हरी पत्ती पर प्रकृति ने चन्दन-तिलक लगा दिया है, तो कहीं भाल की लाल बिन्दिया रख दी है। कहीं किसी पौधे की पत्ती ऊपर से हरी है, तो पीठिका में बैंगनी। इसी प्रकार पुष्पों के शत-शत प्रकार जहाँ मन्द मादक सौरभ तो पवन-दोलन से प्रवहमान रहता ही है, नाना रंगों और रूपों में बन्य-प्रकृति सोलह शृंगार भी करती प्रतीत होती है। कहीं निर्झर की कल-कल ध्वनि आ रही है, तो कहीं रंग-बिरंगे मीन-वृन्द कल्लोल कर रहे हैं--नयन विमोहित होकर ठगे से रह जाते हैं।

युवराज पृथ्वीराज महाकवि चन्द के साथ वार्तालाप करते-करते ज्योंही एक स्थल पर रुक जाते हैं त्योंही यवनिका उठती है।]

पृथ्वीराज--*(भ्रू-नासिका पर बल देते हुए सहसा रुककर)* इतना राग-द्वेष कि हृदय, समवेदना और सहानुभूति की पावन भूमि न रहकर, जलते कोयले की एक धधकती भट्ठी बन जाय! राजभोग की इतनी प्रबल लिप्सा कि मानवात्मा का विमल वात्सल्य नाग-दंश का रूप धारण कर ले! धिक्कार है ऐसे राजभोग को!

चन्द--ऐसी ही होती है युवराज, राज-भोग की दानवी तृष्णा! सौख्यलोलुप मनुष्य यह कहाँ सोच पाता है कि मेरी भाँति संसार के अन्य प्राणी भी

सुख-सम्पदा के अधिकारी हैं ? मदान्ध आँखें यह कहाँ देख पाती हैं। कालरूपी नाग-पिशाच की पहली ही साँस उसे उदरस्थ कर सकती है ?

पृथ्वीराज—जो भी हो, ग़ज़नी के राजकुमार हुसेनख़ाँ को सुरक्षा का आश्वास मुझे देना ही पड़ेगा, चन्द ! जो मुझ से शरण की भीख माँगेगा, उसके प्रा की रक्षा मैं करूँगा, अवश्य करूँगा। भले ही उसका परिणाम युद्ध हो।

चन्द—युद्ध तो करना ही पड़ेगा युवराज ! पर एक बात अवश्य विचारणीय है

पृथ्वीराज—*(सिर उठाकर)* वह क्या ?

चन्द—एक बार हमें सभी सामन्तों की अनुमति लेनी होगी।

पृथ्वीराज—अनुमति तो लेनी ही पड़ेगी।

चन्द—युवराज पृथ्वीराज जन-जन के हितचिन्तक रहे हैं। उनकी कामना ही स राज्य की कामना है।

पृथ्वीराज—*(इधर-उधर देखते हुए)* पर ग़ज़नी के राजकुमार अभी तक आ नहीं, चन्द ! *(टहलते हुए सहसा रुक जाते हैं)*

चन्द—आते ही होंगे। साथ में प्रेयसी चित्ररेखा जो हैं। यह तो युवराज जा ही हैं कि किसी नारी को साथ लेकर चलना और फिर समय पर पहुँचना के ऐसे दो किनारे हैं जो कभी मिलते नहीं। *(चलते-चलते एक मोड़ ले दोनो हँस पड़ते हैं)*

पृथ्वीराज—सुन्दरदास ने यह भी सूचना दी थी राजकवि, कि चित्ररेखा ग़ज़ की राजनर्तकी थी और सुलतान ग़ौरी का हृदय उसे प्राप्त था।

चन्द—हृदय ही तो उसे नहीं प्राप्त था युवराज ! सुलतान मुहम्मद ग़ौरी का हृ यदि उसे प्राप्त होता—चित्ररेखा को वह वास्तव में यदि प्यार करता हो तो अपने भतीजे हुसेनख़ाँ के साथ उसकी अभिन्नता उसके द्वेष का कार कभी न बनती; उसकी हत्या का षड्यन्त्र वह कभी न रचता। और....

पृथ्वीराज—*(बात को बीच में ग्रहण कर)* और उस दशा में चित्ररेखा को अ प्रेमी हुसेनख़ाँ के साथ, रातों-रात ग़ज़नी छोड़ कर निकल भागने आवश्यकता भी न पड़ती।

चन्द—होनहार ही कुछ ऐसी थी युवराज !

पृथ्वीराज—तो होनहार को मैं भी रोक नहीं सकता। जब कभी कर्तव्य की पुकार मेरे कानों में पड़ेगी, मुझे उठना ही होगा। प्राण चाहे मुझे छोड़कर चल दें, पर मेरी प्रत्यंचा पर चढ़े तूणीर के बाण प्राण रहते चलते रहेंगे। मेरी कृपाण की धार कभी कुण्ठित न होगी।

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी—*(सामने से ही विनत होकर)* घणी क्षमा, युवराज !

पृथ्वीराज—*(सहसा रुककर)* कहो, प्रतिहारी ?

प्रतिहारी—ग़ज़नी के राजकुमार हुसेनख़ाँ युवराज से मिलने के लिए पधारे हैं। उनके साथ एक लाजवन्ती नारी भी है।

पृथ्वीराज—उन्हें सम्मानपूर्वक ले आओ।

प्रतिहारी—*(विनत होकर)* जो आज्ञा युवराज ! *(प्रस्थान)*

चन्द—आज तो नहीं, लेकिन कल या परसों इस राजकुमार के सम्मान में एक महोत्सव भी युवराज को करना पड़ेगा।

[सुषमा निकुञ्ज की ओर मुड़ कर]

पृथ्वीराज—(चन्द की ओर देखकर) इच्छारानी ने भी ठीक यही बात कही थी, चन्द ! देखता हूँ, दोनों की प्रकृति समानधर्मा है। *(मुस्कराते हुए चन्द के साथ कक्ष में बैठते हैं)*

[हुसेनख़ाँ के शिरोभाग पर पगड़ी। पगड़ी के ऊपर स्वर्ण-तारों की बेल का कुल्ला। वर्ण गौर, नाक लम्बी, आँखें बड़ी-बड़ी, बाईं ओर कपोल पर लहसुन। केश काले और मूँछों की रेखा सघन। शरीर पर ढीला कुर्ता, बाहों के अन्त में चिपटा चुन्नटदार क़फ़। कटि के ऊपर काली मख़मली बण्डी, जिसके किनारों पर स्वर्ण-तारों का अलंकरण। सलवार और पैरों में पेशावरी जूते। आँखों में सूरमे की धार, कानों में हीरे और हाथ की मुद्रिकाओं में पन्ने, पुखराज और नीलम। अवस्था लगभग अट्ठाईस वर्ष।

चित्ररेखा नीले रेशमी बुरके के भीतर हरे रेशम का कुरता धारण किये हुए है, जिसकी बाहों के अन्त में चुन्नटदार सुनहरे क़फ़ हैं। गौर मुख पर गुलाबी आभा झलमला रही है। गले में रत्नजटित गुलूबन्द और कानों में रत्नालंकृत सोने की

हिलती हुई झुमकियाँ। नयनों में सुरमे की पतली धार और नासिका की कील पर चमकता हुआ हीरा। हाथों में पन्ना और पुखराज के नगों की मुद्रिकाएं। पैरों में हरी मख़मल की स्वर्ण-कला-संयुक्त हलकी-फुलकी नोकदार जूतियाँ और नीचे के धड़ में गरारा। अवस्था में षोडशी।

हुसेनख़ाँ चित्ररेखा के साथ आकर तीन बार कटिपर्यन्त झुककर 'कोरनिश' बजाते हैं और चित्ररेखा सिर से बुरका उतारकर थोड़ा विनत होकर]

हुसेनख़ाँ—युवराज की जय हो।

पृथ्वीराज— *(किंचित् उठकर, पुनः बैठते हुए)* स्वागत है, ग़ज़नी के राजकुमार हुसेनख़ाँ! आर्य-भूमि में पृथ्वीराज आपका सहर्ष स्वागत करता है।

चन्द—*(किंचित् उठकर, पुनः बैठते हुए)* और मैं कला की साक्षात् देवी चित्ररेखा का सादर अभिनन्दन करता हूँ। आइए, *(संकेत के साथ)* इधर विराजिए। युवराज ने आप दोनों सम्माननीय अतिथियों की सुरक्षा का विषय निश्चित करने के लिए ही आज अन्तरंग सभा बुलाई है।

हुसेनख़ाँ—हम लोग तो युवराज की ख़िदमत में कुछ नज़र करने के लिए हाज़िर हुए हैं। हमारी अर्ज़ है कि पहले हुज़ूर हमारी दोस्ती का ख़याल फ़रमाएँ, फिर हमारे रहने का पूरा इन्तज़ाम कर दें।

चित्ररेखा—युवराज, हाथ स्नेह का हो या ममता का, प्रेम का हो या अभिन्न मित्रता का, जब कंठ से लगा लेने के लिए उठता है, तब वह भेद कहाँ रह जाता है कि वह व्यक्ति का है या राज्य का। मैं तो यह समझती हूँ कि युवराज ही हमारे राजा हैं।

पृथ्वीराज—*(प्रभावित होकर)* भगवान् करे, आपका सम्पर्क पाकर, हम सदा ऐसी आत्मीयता का अनुभव करें जिसकी हमें आवश्यकता तो रही हो पर जिसका स्वप्न हमने कभी न देखा हो।

प्रतिहारी—*(विनत होकर)* घणी क्षमा, युवराज।

पृथ्वीराज—कहो, प्रतिहारी?

प्रतिहारी—युवराज की जय हो। सुन्दरदास जी पधारे हैं।

पृथ्वीराज—उन्हें यहाँ भेज दो।

प्रतिहारी—जो आज्ञा युवराज! *(विनत भाव से प्रस्थान)*

पृथ्वीराज—यह तो भविष्य ही बता सकेगा कि आप लोगों से परिचय प्राप्त करके हमको कितनी प्रसन्नता हुई है।

चन्द—यदि यहाँ रहने से आप के जीवन में सुख-सन्तोष की थोड़ी भी अभिवृद्धि हुई, जिसकी हमें पूर्ण आशा है, . . .

पृथ्वीराज—*(चन्द की बात के मर्म को ग्रहण कर)* तो यह हमारे लिए गौरव की बात होगी।

[सुन्दरदास का प्रवेश]

सुन्दरदास—*(विनत होकर)* युवराज की जय हो।

पृथ्वीराज—*(मुस्कराते हुए)* आओ सुन्दरदास। कहो, कोई विशेष कष्ट तो नहीं है?

सुन्दरदास—आर्य की छत्र-छाया में साधारण धूप तक का तो अनुभव कभी होता नहीं, कष्ट की तो बात ही दूर है। . . . हाँ युवराज ग़ज़नी के राजकुमार मीर हुसेनख़ाँ ने जो बहुमूल्य वस्तुएँ अजमेर-नरेश महाराज सोमेश्वर की सेवा में भेंट की हैं, उनकी सूची यह है।

[एक कागज़ युवराज के समक्ष उपस्थित कर देता है]

पृथ्वीराज—*(साधारण दृष्टि से देखकर)* इनके लिए हम ग़ज़नी के राजकुमार के बहुत-बहुत आभारी हैं। पर वैधानिक रूप से यह सूची और सामग्री आप कृपा करके महामात्य कैमास को ही दे दें। बल्कि उत्तम तो यह होगा कि आप इसको हमारी अन्तरंग-सभा में ही उपस्थित करने की कृपा करें।

सुन्दरदास—जो आज्ञा युवराज! *(प्रस्थान)*

[मीर हुसेनख़ाँ और चित्ररेखा दोनों एक-साथ उठकर आज्ञा लेते हैं]

हुसेनख़ाँ—आदाब के साथ इजाजत अर्ज़ है। *(तीन बार झुककर कोरनिश बजाते हैं)*

पृथ्वीराज—आप निश्चिन्त रहें राजकुमार, हमने कोतवाल नीतिराव खत्री के

महल में आपके ठहरने का समुचित प्रबन्ध कर दिया है।

चित्ररेखा– *(हाथ जोड़कर विनत भाव से)* हम युवराज के आभारी हैं।

चन्द– *(उठकर)* आशा है, हम फिर मिलेंगे और उत्तरोत्तर मिलते ही रहेंगे।

हुसेनखाँ–हज़ार-हज़ार शुक्रिया।

[हुसेनख़ाँ और चित्ररेखा का प्रस्थान]

चन्द– *(पृथ्वीराज की ओर देखकर)* दोनों का कितना सुन्दर व्यक्तित्व है। कितनी सुन्दर जोड़ी है युवराज! जितनी बार देखता हूँ, विधाता की कला के मनोहर कौशल का ध्यान हो उठता है।

पृथ्वीराज– *(कुछ स्थिर होते-होते)* सब कुछ सुन्दर होने पर भी कौन जाने होनहार सुन्दर है कि असुन्दर! रह-रहकर कोई मेरे कानों में कह उठता है कि सुलतान मुहम्मद ग़ौरी को चित्ररेखा का वियोग कभी सहन न होगा। विग्रह निश्चित है। काल खड़ा-खड़ा सब कुछ देख रहा है और नियति हँस रही है।

[यवनिका गिरती है]

द्वितीय दृश्य

स्थान–अजमेर-नरेश सोमेश्वर चौहान की बारहदरी।

समय–लगभग नौ बजे रात्रि।

[स्फटिक के आसन पर पाँच इंच मोटा गद्दा, उसके ऊपर रेशम की बादामी चादर बिछी है। पाँच मसनदें हैं, उनके ऊपर भी बादामी रेशम का आवरण, जिसके दोनों किनारों पर सोने की तारों का अलंकरण। आठ-दस गाव-तकिये मसनदों के पार्श्व में। इन तकियों का आवरण भी बादामी रेशम का है। आसन के पावदान पर व्याघ्रचर्म पड़ा है। जब दीवारों पर धूपाधारों में स्थापित अगरुबत्तियाँ सुगन्धित धूम्र उड़ाने लगती हैं, तब द्वारागत पवन-झकोरे उनसे टकराकर कभी ग्रीवा से लिपट जाते हैं और कभी कुन्तलसम्भार से अवनत होकर मुस्करा उठते हैं।

मुख्य द्वार पर दो सशस्त्र प्रहरी खड़े हैं, जिनके निकट ही कदलीस्तम्भ झूम रहे हैं। प्रमुख आसन पर युवराज पृथ्वीराज, महामात्य कैमास, काका कान्ह, कवि चन्दबरदाई, चामुण्डराय तथा गोयन्दराय विराजमान हैं।

युवराज पृथ्वीराज के शीश पर ज़री की पाग है, कानों में हीरों की मुरकियाँ और गले में मोतियों की माला। गोल मुख के ऊपरी होंठ पर हलकी रेखा अंकुरित हो आई है। नासिका लम्बी और ललाट उन्नत है। कैमास उनके निकट बैठे हुए कुछ मन्त्रणा कर रहे हैं। जिस समय वे उनके कान के पास से अपना मुँह हटाने लगते हैं, उसी समय यवनिका उठती हैं।].

कैमास– *(मुस्कराते हुए)* नियति के विधान को कौन टाल सका है। संयोग से ग़ज़नी के सुलतान शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ौरी के भतीजे, मीर हुसेनख़ाँ यहाँ पधारे हैं, और श्री सुन्दरदास जी उनके प्रतिनिधि के रूप में यहाँ उपस्थित हैं।

सुन्दरदास– *(हाथ जोड़कर)* महाराज अजमेर-नरेश तथा उनकी इस सभा को मेरा सादर अभिवादन।

[हर्ष-ध्वनि]

चन्द–रत्नगर्भा भारतभूमि में किसी भी विदेशी का आगमन हमारे लिए आनन्द

और मंगल का हेतु है। उनका स्वागत-सत्कार हमारा धर्म है। उनके सम्मान में यथाविधि कोई आयोजन तो होना ही चाहिए।

काका कान्ह—अवश्य होना चाहिए। *(आँखों पर सोने की पट्टी बँधी है, उसको कुछ उचकाने लगते हैं)*

सुन्दरदास—परन्तु, राजकवि! मीर हुसेनख़ाँ यहाँ भ्रमण के लिए नहीं आये। वे आये हैं आपके राज्य में एक स्वतन्त्र नागरिक के रूप में स्थान पाने के लिए।

काका कान्ह— *(सिर उठाते हुए)* एक स्वतन्त्र नागरिक के रूप में स्थान पाने के लिए! हः हः हः।

[पृथ्वीराज की प्रतिक्रिया—भृकुटियों में तनाव]

कैमास—काका जी के इस हास्य का रहस्य मैं समझ रहा हूँ, परन्तु उनसे मैं वैधानिक शिष्टाचार की आशा करता हूँ।

काका कान्ह— *(साधारण स्वर में)* वैधानिक शिष्टाचार! *(अकस्मात् उच्च स्वर में)* अन्तरंग-सभा में वैधानिक शिष्टाचार के खेल हम बहुत खेल चुके हैं महामात्य! राजनीति के क्षेत्र में उस शिष्टाचार का मूल्य कितना है, यह भी हम जानते हैं।

कैमास—कृपया अभिप्राय स्पष्ट करें, काका जी।

काका कान्ह—अभिप्राय! अभिप्राय यह है कि राज्य के समृद्धि-वर्द्धन की वेला में अशान्ति का बीजारोपण इसी शिष्टाचार की देन होती है।

चन्द—काका जी भ्रम में हैं। शिष्टाचार की महत्ता ही इस बात में है कि कोई आशंका भी हो तो हम उसे प्रसन्नता से सहन करें।

काका कान्ह—पर शिष्टाचार की कृत्रिम महत्ता के भीतर किसी प्रवञ्चना की नागिन को दुग्धपान का निमन्त्रण देना हमें कभी स्वीकार नहीं हो सकता।

[पृथ्वीराज अतिशय विचारमग्न हो जाते हैं, सहसा उनका हाथ मस्तक पर चला जाता है]

कैमास— *(मुस्कराते हुए)* काका जी की इस आशंकालु प्रकृति में निस्सन्देह अटूट देश-भक्ति है। उनका दृष्टिकोण हमारे लिए कल्याणकारी है *(एक*

पत्र उठाते हुए) परन्तु कदाचित् उन्हें विदित नहीं कि मीर हुसेनख़ाँ ने महाराज को उच्च श्रेणी के बाणों से भरे हुए पाँच तूणीर, एक खुरासानी धनुष, एक सिंहलद्वीपी कुञ्जर, पाँच इराकी अश्व, एक अमूल्य हीरा तथा अनेकानेक मणि-माणिक्य भेंट किये हैं। इसके अतिरिक्त वे अपने साथ एक सहस्र सशस्त्र सैनिक भी लाये हैं।

चन्द– *(पहले मुस्कराते हैं, फिर विस्मय से)* ऐसी बात है! तब तो मेरे विचार में चिन्ता का कोई कारण नहीं है। काका जी क्षमा करें, वे कभी-कभी बहुत भावुकता में आ जाते हैं। सच पूछिए तो मीर हुसेनख़ाँ हमारी शरण में आये हैं और शरणागत की रक्षा करना हमारा धर्म है।

काका कान्ह–हैं-हैं! शरणागत! शरणागत की रक्षा प्रकाश में होती है अन्धकार में नहीं। हम अभी तक यही जान नहीं सके कि मीर हुसेनख़ाँ को अपने चाचा मुहम्मद ग़ौरी का राजवैभव छोड़कर हमारे राज्य में शरण लेने की अ[illegible]ता हुई क्यों?

[[illegible]राज कुछ बोलना चाहते हैं, पर कुछ सोच-विचार कर रह जाते हैं]

सुन्दरदास– *(कुछ अस्त-व्यस्त होकर)* काका जी के इस प्रश्न ने तो सहसा हमको बड़े संकोच में डाल दिया है।

पृथ्वीराज–काका जी ऐसा प्रश्न उपस्थित कर रहे हैं, जिसका उत्तर देना सुन्दरदास जी की सीमाओं से बाहर की बात हो सकती है।

कैमास–युवराज की चिन्ता स्वाभाविक है। पर इस अवसर पर मीर हुसेनख़ाँ के आन्तरिक जीवन का थोड़ा-सा परिचय अगर हमें मिल जाय, तो उससे उनके गौरव को कोई क्षति न पहुँचेगी। उनका सांस्कृतिक महत्व तो हमारे लिए बड़े उत्साह और आनन्द का विषय है। काका जी भी उनका परिचय पाकर परम प्रसन्न होंगे।

सुन्दरदास–आपको यह जानकर कुतूहल होगा कि हुसेनख़ाँ की वह प्रेयसी भारतीय संस्कृति की बड़ी भक्त है। उसका नाम ही चित्ररेखा है।

चन्द–मैंने उनकी बड़ी प्रशंसा सुनी है। नृत्य-संगीत में वे बड़ी निपुण हैं। मीर साहब स्वयं भी एक उच्चकोटि के गायक हैं।

काका कान्ह– *(मुस्कराते हुए)* प्रेमी गायक और प्रेयसी नर्तकी। उत्तम संयोग है। मैं उन्हें बधाई देता हूँ।

[सभा में हर्ष की लहर दौड़ जाती है और पृथ्वीराज मुस्कराने लगते हैं]

सुन्दरदास– *(मुस्कराते हुए)* काका जी की बधाई की मिठास उनके पास पहुँचा दी जायगी। हाँ, तो दोनों में जब परस्पर प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न होने लगा, तब सुलतान मुहम्मद ग़ौरी के हृदय की द्वेषाग्नि भड़क उठी। उन्होंने कुछ ऐसा षड्यन्त्र रचने की चेष्टा की कि मीर हुसेनख़ाँ के प्राण भय से कम्पित हो उठे। रक्षा का जब कोई अन्य उपाय दिखाई न दिया तब रातों-रात उनको ग़ज़नी छोड़ देने के लिए विवश होना पड़ा।

काका कान्ह–विवश तो होना ही पड़ेगा। राजनीति और नारी !–दोनों समानधर्मा। विचित्र संयोग है। अब मुझे और कुछ नहीं कहना।

चन्द– *(बात काटते हुए)* लेकिन मुझे कहना है। मीर हुसेनख़ाँ को अपनाने के लिए हम अपना हृदय खोल देने को तैयार हैं, पर उनको राजभक्ति की शपथ लेनी पड़ेगी।

कैमास– *(गम्भीरता से)* इसका विश्वास हमको मिल चुका है।

काका कान्ह– *(आवेश में)* राजनीति में ऐसे विश्वास का मूल्य उतना ही है जितना एक शब्द कहने के क्षण का। स्वदेश के भविष्य को हम किसी क्षण के हाथ बेचने को कभी तैयार नहीं हैं। महामात्य को जो विश्वास मिला है, मैं जानना चाहता हूँ, उसकी आयु कितनी है ?

कैमास– *(तीव्रता से)* पर काका जी यह भूल रहे हैं कि यदि वे किसी एक महत्वपूर्ण शब्द का मूल्य एक क्षण-मात्र मान बैठे हैं, तो मनुष्य के क्षण-भंगुर जीवन की आयु स्थिर करने के लिए उनके पास कौन-सी युक्ति है ? *(आश्वस्त होकर गम्भीरता से)* भविष्य की निराधार आशंकाओं से हमें क्षण-भर भी विचलित न होना चाहिए। मीर हुसेनख़ाँ हमारे राज्य की शरण चाहते हैं और मानवता की रक्षा के नाम पर उनको शरण देना हमारी संस्कृति का एक अंग है।

काका कान्ह–मैं देख रहा हूँ कि महामात्य शरणागत की रक्षा के विषय पर दर्

दुन्दुभि बजा रहे हैं। परन्तु जिस समय दिनमणि क्षितिज में छिप जाते हैं, उस समय हमारे कक्ष में बलपूर्वक घुस आने वाला अन्धकार शरणागत होता है या दस्यु ? और जिस झंझावात का दुर्निवार झकोरा हमारे शयन-कक्ष के दीपाधारों की मणियाँ तोड़-फोड़कर यत्र-तत्र फेंकने लगता है, उस समय वह शरणागत होता है या धृष्ट शाखामृग ? मेरे मत से द्रष्टव्य यह है कि नवागत शरणागत की भावना में कहीं किसी कपट की माया का हाथ तो नहीं है ?

कैमास– *(हँसते-हँसते)* कपट की माया! काका जी अब भी भ्रम में हैं। जिस निष्कपट भाव से हृदय खोलकर उन्होंने अपनी सारी परिस्थिति हमारे सामने रख दी है, उससे तो हमें उनकी मित्रता की ही विमल वृत्ति का परिचय मिलता है। ऐसी दशा में उनका समादर करना हमारा कर्तव्य हो जाता है।

काका कान्ह– *(गम्भीरता से)* प्रत्येक परिस्थिति को खुले रूप में आपके सम्मुख रख देना उसी कर्तव्य-पूर्ति की एक कड़ी है। मेरे जीवन का अनुभव, महामात्य क्षमा करें, बड़ा कटु है। *(आवेश में)* हमने इन्हीं आँखों से देखा है कि एक नारी के भ्रूक्षेप ने राज्य-के-राज्य विध्वंस कर डाले हैं। मैं एक बार फिर सावधान कर देना चाहता हूँ कि शरणागत की रक्षा आप अवश्य करें, लेकिन पहले यह देख लें कि भविष्य की सम्भावनाएँ हमारे पक्ष में कितनी हैं ?

[पृथ्वीराज और गम्भीर हो उठते हैं]

चन्द पुण्डीर– *(विचलित होकर)* समस्या वास्तव में बहुत गम्भीर है।

चामुण्डराय– *(भविष्य देखता हुआ-सा)* वास्तव में हमारे लिए बड़ी सावधानी की आवश्यकता है।

चन्द– *(आशंका-भरे स्वर में)* सचमुच हमें बहुत सोच-समझकर ही किसी निर्णय पर पहुँचना चाहिए। यदि मीर हुसेनख़ाँ को अपना बना लेने की प्रतिक्रिया ने सुलतान मुहम्मद ग़ौरी को विचलित कर दिया, तो वास्तव में हमारी स्थिति बड़ी गम्भीर हो जायगी।

[पृथ्वीराज की प्रतिक्रिया-सोचने की मुद्रा में पुनः मस्तक पर हाथ रख लेते हैं]

काका कान्ह– *(प्रशंसात्मक स्वर में)* राजकवि धन्य हैं। वे वास्तव में हम भावनाओं के सच्चे प्रतिनिधि हैं। आज हमारे सामने सबसे अ विचारणीय प्रश्न यही है कि हम कहीं ऐसे व्यक्ति की पीठ तो नहीं ठोक जिसका चरित्र हमारे लिए भावी आपत्तियों का आकर्षण-बिन्दु हो। हमारा देश ईर्ष्या-द्वेष के कारण छोटे-छोटे खण्ड राज्यों में बँट गया हो, किसी साधारण भूल से भी शत्रु-देश की भावनाओं को उत्तेजना देना ह लिए कदापि कल्याणकारी नहीं हो सकता।

[सन्नाटा छा जाता है और पृथ्वीराज गम्भीर होकर बोल उठते हैं]

पृथ्वीराज– *(एकाएक काका कान्ह के कथन का अन्तिम वाक्य ग्रहण कर* सचमुच नहीं हो सकता। विचार करने पर मुझे भी काका जी की नीति समुचित जान पड़ी। यह ठीक है कि शरणागत की रक्षा हमारी संस्कृति एक अक्षुण्ण निधि है; यह भी ठीक है कि लौकिक व्यवहारों की पीठि पारस्परिक विश्वास की नींव का आधार रखती है, पर मेरी मान्यता न कि विश्वास और अविश्वास की मिली-जुली दुविधा की पृष्ठभूमि पर पा गई मैत्री सफल हो सकती है। यदि मित्र-पक्ष हमारे विश्वास की रक्षा क में असमर्थ हो, तो उसका परिणाम हमारे भविष्य को संकट में डाल सक है।

चन्द–युवराज से हम ऐसी ही दूरदर्शिता की आशा रखते हैं।

पृथ्वीराज–यह दूरदर्शिता मेरी नहीं, काका जी की है जिन्होंने अभी सुझाया सारा भारतवर्ष इस समय खण्ड-राज्यों में बँट चुका है। ऐसी दशा में सम् खण्ड-राज्यों को संगठित करना ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। हमें य कभी न भूलना चाहिए कि हमारे राज्य के जन-जन का लक्ष्य एक है, अ समस्त खण्ड-राज्यों का लक्ष्य भी एक होना चाहिए। यह लक्ष्य है–ए अखण्ड और महान् राष्ट्र का निर्माण।

[करतल-ध्वनि]

पृथ्वीराज–मीर हुसेनख़ाँ मुझे क्षमा करें। व्यक्तिगत रूप से आंतरिक सहानुभू

रखते हुए भी मैं उन्हें अपने राज्य में स्थान नहीं दे सकता। जो दुविधा दुर्दिन की जननी हो, अपने देश को बलिवेदी पर उत्सर्ग कर दे. उसका पोषण मैं कभी न होने दूंगा।

कांका कान्ह– *(सिर ऊपर उठाकर)* राजनीति में सत्य का यह समन्वय ही हमारी भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का प्रतीक रहा है। मुझे युवराज के इन शब्दों पर गर्व है।

चन्द– *(गद्गद् वाणी से)* पृथ्वीराज की भावी नीति में कला, साहित्य और राजनीति का यह सुन्दर संगम, भगवान् करे, अजर-अमर हो।

[जयजयकार के उद्घोष के साथ यवनिका गिरती है]

तृतीय दृश्य

स्थान–अजमेर-नरेश का अन्तःपुर । युवराज पृथ्वीराज का शयन-कक्ष ।

समय–अर्द्धरात्रि ।

[दीपाधारों के गुच्छे-के-गुच्छे कक्ष की चाँदनी के नीचे लटक रहे हैं, जिनमें रत्नों के लटकन, विविध रंगों की किरणें एक चकाचौंध उत्पन्न करती रहती हैं। चारों ओर की दीवारों पर बहुवर्ण चित्र बने हुए हैं, जिनमें स्थल-स्थल पर मणि-माणिक्य का शोभनीय अलंकरण है । यत्र-तत्र लगी अगरु का सुगन्ध समीर प्रवहमान हो रहा है । युवराज पृथ्वीराज एक दुग्ध-श्वेत शय्या पर कोमल तकिया वक्ष से दबाये हुए विचारलीन चुपचाप लेटे हैं । उनका एक पैर गाव-तकिये के ऊपर रखा हुआ है । दाहिने पार्श्व में एक सुवासित पुष्पहार रखा है, जिसका फुँदना पाटी के नीचे लटक रहा है । चारों ओर पाँच-पाँच वर्तिकाओ वाले स्वर्णदीप प्रदीप्त हैं । एक परिचारिका जयपत्ती शय्या के शीर्ष की ओर मौन खड़ी व्यजन डुला रही है । भूमितल पर जुड़ी स्फटिक-शिलाओ की अभिनव शैलियों में मेघों की उड़ान-जैसी आभा फूट रही है । युवराज के युगल पदत्राणों में एक का मुख पर्यंक की ओर है, दूसरा कुछ तिरछा होकर अन्तराभिमुख हो गया है । परिचारिका जग्गो पैर दाबती-दाबती उंगलियाँ चटका उठती है । इसी समय युवराज्ञी इच्छारानी प्रवेश करती हैं। यवनिका उठती है]

इच्छारानी– *(प्रसन्नमुख, प्रवेश करती हुई)* लाज की ही बात है । आधी रात हो गई, अष्टमी के चन्द्रदेव रजनी की अञ्चल पकड़ते-पकड़ते न जाने क्यों ठिठुक कर खड़े हो रहे हैं ? और.....और मैं अपनी भी क्या कहूँ ! मैं स्वयं भी उनसे जो कहना चाहती थी, वह कहते-कहते न कह पाई । .....ओ जग्गो, अब तू जा ।

जग्गो– *(संकुचित होकर)* कैसे जाऊँ रानी जी, युवराज तो अभी सोये नहीं

इच्छारानी– *(आश्चर्य के साथ)* ऐं ! अभी सोये नहीं ? बात क्या है ?... फिर भी जग्गो, तू जा ।

[जग्गो का प्रस्थान]

इच्छारानी– *(पर्यंक पर आकर युवराज के केशों में उँगलियाँ गुम्फित कर)* सर्वत्र आर्य की जयजयकार हो रही है। मुझे आज पहली बार अनुभव हुआ कि युवराज लोक-तन्त्र का कितना ध्यान रखते हैं। बार-बार मेरे मन में आता था कि युवराज चित्ररेखा के आँसुओं को कैसे भुला सकेंगे! कौन नहीं जानता कि करुणा, दया, ममता और वियोग की पीड़ा से निकले हुए आँसुओं का ध्यान युवराज कभी नहीं भुला सकते! लेकिन आज जब मेरे कानों ने सुना कि देश की लाज के आँसू, उन आँसुओं की वेदना, युवराज की निजी मान्यताओं के ऊपर छा गई है, तो मेरा मन हर्षोल्लास और गर्व से फूल उठा। बोलो, बोलो, स्वामी! अब आपको कौन-सी चिन्ता है?

पृथ्वीराज– *(दीर्घ नि:श्वास)* युवराज्ञी नहीं समझ सकेंगी। कदाचित् मैं भी अपने को समझ नहीं पा रहा। *(रुकते-रुकते)* तुम सो जाओ युवराज्ञी। मेरा क्या है! मुझे तो उस समय जागना ही पड़ता है जब सारा जगत् सो जाता है। *(नि:श्वास)* राजकीय कर्तव्य-निष्ठा का संयम कितना कठोर होता है, इच्छारानी! काश, तुम जान सकतीं!

इच्छारानी–जानती हूँ युवराज! कर्तव्य-निष्ठा का संयम ही तो राजेश्वरों का गौरव होता है। यह कठोरता की ही देन है जो बड़े-बड़े सम्राट् दिवंगत हो जाने के बाद इतिहास के पृष्ठों में देवताओं की-सी पूजा-अर्चना के अधिकारी बन जाते हैं।

पृथ्वीराज–किन्तु उस अधिकार के भीतर कितनी कायरता, कितना क्रन्दन भरा रहता है.....युवराज्ञी नहीं जान सकेंगी। एक दिन जब इस संसार में न युवराज रहेंगे न युवराज्ञी, तब आज के इतिहास का पन्ना-पन्ना पुकार-पुकार कर यही कहेगा न कि युवराज ने मीर हुसेनख़ाँ और उनकी जीवनसंगिनी चित्ररेखा को एक दिन यह आश्वासन दिया कि आप लोग हमारे राज्य में आनन्दपूर्वक रहें तो यह बात हमारे लिए केवल प्रसन्नता की ही नहीं, एक सांस्कृतिक गौरव की द्योतक होगी। किन्तु.... *(एक नि:श्वास)* जाने दो, उस बात को, जाने दो युवराज्ञी। पृथ्वीराज की व्यक्ति-सत्ता का मूल्य एक साधारण नागरिक से भी हीन, तुच्छ और क्षुद्र है। वह अपने मन की कोई बात अन्तरंग-सभा में कह नहीं सकता। वह

अपनी वेदना का अन्तःस्वर दबा-दबाकर रखता है। वह अपनी कामना को कुचल-कुचलकर हँसता है। वह आनन्द और तृप्ति की साँस लेता हुआ जीता है। *(निःश्वास)* न जाने, लोग ऐसे जीवन को कैसे प्यार करते हैं! क्या इसी का नाम जीवन है?

इच्छारानी–*(सहसा)* आप यह क्या कह रहे हैं नाथ! यह मैं क्या सुन रही हूँ? *(कुछ रुककर)* ओह! समझी! नारी के आँसुओं की माया ने अन्ततोगत्वा स्वामी को विचलित कर ही दिया। *(रुकती-रुकती मन्द स्वर में)* लेकिन नहीं....स्वामी की इच्छा ही तो इच्छारानी की वास्तविक सत्ता है। कदाचित् मैं ही भूल रही थी। *(झुककर आँखों में आँखें डालती है)* क्यों, मैं ही भूल रही थी न?

पृथ्वीराज–इच्छारानी पहले जो कह रही थीं, कदाचित् वही उनका आन्तरिक अभिमत था। राजतन्त्र और शासन-व्यवस्था–राज्य का मान, महत्व और गौरव जो कहलाये, युवराज को वही तो कहना पड़ेगा। उसके व्यक्तिगत वचन और आश्वासन का मूल्य ही कितना है? संसार के सभी राजा, महाराजा और सम्राट् इस अर्थ में कितने दयनीय हो जाते हैं इच्छारानी, यह मेरी समझ में आज ही आया है। *(उठकर तीव्रता से)* प्रातःकाल होते-होते पहले मैं महाराज की शय्या के पास जाकर खड़ा हो जाऊँगा। मैं उनसे स्पष्ट कह दूंगा कि पृथ्वीराज इन राजकीय शृंखलाओं में जकड़ा हुआ कोई राजबन्दी नहीं है। उसका भी एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। उस व्यक्तित्व की माँग अपना मूल्यांकन चाहती है। उसके प्रत्येक आश्वासन का, आश्वासन के संकेत का, कुछ अर्थ होना चाहिए।

इच्छारानी–सचमुच, सचमुच, प्राणेश! एक चित्ररेखा ही नहीं, संसार की समस्त नारी-जाति के आँसुओं के प्रति युवराज की दृष्टि में प्रगाढ़ ममता और समवेदना है – यह मैं अब समझ सकी हूँ! पर....पर, बुरा न मानें तो एक बात मैं भी कहूँ प्राणनाथ!

पृथ्वीराज–कहो इच्छारानी, जल्दी कहो। कहो कि जो कुछ मैं कहता हूँ वह बिल्कुल वही है जो मेरी इच्छारानी, मेरे अन्तःकरण की अधीश्वरी का एक स्वाभाविक स्वर है।

इच्छारानी–मैं यही कहने जा रही थी नाथ, कि हुसेनख़ाँ और उनकी जीवन-संगिनी सुन्दरी चित्ररेखा को युवराज ने जो आश्वासन दिया था, वह उनका कोई व्यक्तिगत आश्वासन न था। वह तो हमारे देश की सांस्कृतिक मान्यताओं का ही एक स्वरूप था। युवराज की व्यक्तिगत भावनाओं का उसमें कोई योग न था! कौन कहता है कि युवराज मात्र व्यक्ति हैं! युवराज का स्वर ही तो इस देश की जनता का स्वर है।

पृथ्वीराज– *(आश्चर्य से)* तुमने क्या कहा इच्छारानी? फिर से कहो तो? *(रुककर)* सचमुच तुमने वही बात कह दी जिसकी मैं प्रतीक्षा कर रहा था। *(प्रसन्नता से)* ....तो वास्तव में मेरा आश्वासन व्यक्तिगत नहीं था। उसमें राज्य की भावना थी, राज्य के जनपदों की सहानुभूति थी। उसका प्रत्येक स्वर अजमेर-राज्य का अन्त:स्वर था।

इच्छारानी–बस, मेरा यही मन्तव्य था। आर्य को मैं यही सुझाना चाहती थी। इसमें चिन्ता की कोई बात ही नहीं है। देखो, देखो, चन्द्रदेव भी चुपके-चुपके हमारी बातें सुन रहे हैं। खिड़की की ओट से ऐसे मन्द-मन्द मुस्करा रहे हैं, मानो विभावरी का श्रीमुख फुल्ल-कुसुम बन गया हो! रजनीगन्धा कैसी महक रही है! कुमुदिनी के चिबुक में अमृत-कूप बोल-बोल उठता है!

पृथ्वीराज– *(हँसकर)* इच्छारानी को चन्द्रदेव ने अपनी ओर खींचने की चेष्टा कर ही ली।

इच्छारानी–युवराज को ईर्ष्या हो रही है? पर वह यह क्यों भूल जाते हैं कि इच्छारानी के चन्द्रदेव, उसके प्राणों के देवता युवराज ही तो हैं–दिवस के दिवाकर, राका के राकेश।

[इसी क्षण पार्श्ववर्ती रनिवास से एक गीत की पंक्ति गूँजती-गूँजती सुनाई पड़ने लगती है]

लुट गई निधियाँ, सुधियाँ न जागीं।

पृथ्वीराज– *(आश्चर्य से)* कौन? यह कौन गा रहा है?

इच्छारानी–मुझे तो ऐसा जान पड़ता है जैसे गीत मेरा है, गा कोई और रहा

है।

पृथ्वीराज—समझा। *(मुस्कराते हैं)* इन दीपकों की लौ भी कदाचित् यही रही है। क्योंकि दीपक तो जलता नहीं, प्रकाश के धर्म-पालन के लिए के स्नेह ही जलता है—केवल स्नेह।

[पार्श्वगीत। दोनों कान लगाकर सुनते हैं]

लुट गईं निधियाँ, सुधियाँ न जागीं।
घुल गये प्रतीक्षा में—रसाल गदराये।
घुल गये फालसे, अधर न जब छू पाये।
घुल गयीं जमुनियाँ, बिन पालना झूले।
कदली के फल घुल गये, समय पर भूले।
छुट गई बिंदिया, बहियाँ से लागीं।
लुट गईं निधियाँ, सुधियाँ न जागीं।।

[युवराज पृथ्वीराज और युवराज्ञी इच्छारानी एक-दूसरे की ओर देखकर मुस्कराते हैं—और यवनिका गिरती है]

चतुर्थ दृश्य

[राजप्रासाद से लगी पुष्प-वाटिका। महाराज एक मयूरासन पर विराजमान हैं। सामने स्फटिक-खंडों में निर्मित एक षट्कोण फव्वारे में नाना रंगों के मीन-वृन्द क्रीड़ा-कौतुक में निमग्न हैं। भगवान् भुवन-भास्कर की कोमलता अभी शेष है। महाराज विचार-वीथियों में भ्रमण करते जान पड़ते हैं। महारानी कमलादेवी के आगमन की सूचना से सहसा उनकी विचार-शृंखला टूट जाती है।

इसी क्षण परिचारिकाओं से घिरी महारानी प्रवेश करती हैं। यवनिका उठती है]

सोमेश्वर—*(महारानी का स्वागत करते हुए)* आओ कमले ! मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा में था। *(आश्चर्य में पड़कर)* किन्तु...किन्तु मुकुलित कमलों की इस उल्लास वेला में यह म्लान मुख-कान्ति कैसी, भद्रे !

कमलादेवी—सांसारिक प्रपञ्च से जब माता के वात्सल्य को आघात पहुँचाया जाता है तब ऐसा ही होता है महाराज ! पृथ्वी की भावना को महाराज ने भले ही न सुना हो, पर पुत्र के प्रति महाराज की कमला—कमला की ममता और ममता की करुणा ने सुना है।

सोमेश्वर—अवश्य सुना होगा।

कमलादेवी—वही करुणा, यदि मेरी भंगिमा से बोल उठी हो, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है महाराज ! *(सहसा रुककर)* पृथ्वी के निर्णय को क्या महाराज ने नहीं सुना ?

सोमेश्वर—सुना है। साथ यह भी सुना है कि महामात्य कैमास उसके पक्ष में नहीं थे। *(सहसा रुककर)* तो क्या इस प्रसंग में कोई चिन्ता की बात उठी है ?

कमलादेवी— *(आकाश की ओर दृष्टि डालकर)* चिन्ता की ही बात है महाराज ! क्या आपको विदित नहीं कि कल से ही पृथ्वी अस्वस्थ है। उसकी मुखश्री मन्द पड़ गई है। जान पड़ता है, उसे रात-भर नींद नहीं आई। अभी

तक उसने शय्या नहीं छोड़ी।

सोमेश्वर– *(कुछ गम्भीर होकर)* हूँ! पृथ्वी ने अभी तक शय्या नहीं छोड़ी! *(दाईं ओर देखते हुए)* प्रतिहारी!

प्रतिहारी– *(सिर झुकाकर)* आज्ञा महाराज!

सोमेश्वर–जाओ, देखो युवराज क्या कर रहे हैं! अगर जग गये हों तो कहना, महाराज स्मरण कर रहे हैं।

प्रतिहारी– *(सिर झुकाकर)* जो आज्ञा महाराज। *(प्रस्थान)*

कमलादेवी–सारी रात पृथ्वी की करवटें बदलते बीती है। महाराज तो जानते हैं कि संसार के सभी दु:खी और संकटापन्न प्राणियों के लिए उसके हृदय में कितना स्थान है। दुखियाओं के आँसू उसकी कितनी बड़ी दुर्बलता है। दु:ख तो वह किसी का देख ही नहीं सकता। कल रात से ही उसका मन गिरा गिरा-सा है। इतना दु:खी मैंने उसे कभी नहीं देखा।

सोमेश्वर– *(शान्त भाव से)* महारानी बहुत शीघ्र घबरा जाती हैं। यह उन्हें शोभा नहीं देता। मेरा अनुभव है कि पुरुषार्थ के बिना पुरुष, पुरुष नहीं, कापुरुष है। और प्रत्येक पुरुषार्थ अपनी पीठिका में एक त्याग रखता है। पृथ्वी ने ऐसा उचित निर्णय देकर सचमुच एक त्याग का परिचय दिया है।

कमलादेवी–त्याग का परिचय, सो भी वय:सन्धि की घड़ियों में! इसीलिए महाराज ऐसा कुछ करें, जिसमें युवराज की मर्यादा भी स्थिर बनी रहे और उसकी हार्दिक कामना भी पूर्ण हो जाय।

सोमेश्वर–वही...वही मैं सोच रहा हूँ महारानी! लेकिन...लेकिन प्रश्न यह है कि कल का दिया हुआ निर्णय क्या आज मुझे बदल देना चाहिए?

कमलादेवी–महाराज चाहें तो बदल सकते हैं। *(रुककर)* यदि महाराज केवल महाराज हैं तो क्या मेरा पृथ्वी पितृ-स्नेह से केवल इसलिए वंचित हो जायगा कि वह एक महाराज का पुत्र है?

सोमेश्वर–नहीं कमले, ऐसा नहीं होगा।

कमलादेवी–मैं देख रही हूँ कि उसके निर्णय पर महाराज को गर्व है। किन्तु

महाराज यह भूल रहे हैं कि पृथ्वी हुसेनख़ाँ को शरण देने के लिए वचनबद्ध हो चुका था। अपने प्रण की लाज न रखने के कारण आज उसका क्षात्र-धर्म रह-रहकर उसे धिक्कार रहा है। उसकी पीड़ा से वह कराह रहा है महाराज!

सोमेश्वर– *(मस्तक ऊँचा उठाकर गौरव की मुद्रा में)* महारानी! अजमेर-नरेश का कोई अपना व्यक्तित्व नहीं, वह प्रजा का प्रतिनिधि है। उसकी भावनाओं का रक्षक, उसकी कामनाओं का पोषक, उसकी पल-पल की प्रतिक्रियाओं का निरीक्षक और शोधक है। पितृ-हृदय के अधिकार का प्रयोग उसके द्वार पर सदा हाथ बाँधे खड़ा रहता है।

कमला०–महाराज! पितृ-हृदय के वात्सल्य का अधिकार इतना निरीह कभी नहीं हो सकता कि कोई उसका हाथ बाँध सके। वह सदा बन्धन से मुक्त होता है।

सोमेश्वर–महारानी यह भूल रही हैं कि प्रजा के भी कुछ अधिकार होते हैं।

कमला०–प्रजा के अधिकारों की रक्षा के बहाने राज्याधिकारों का संतुलन शिथिल हो जाने देना हमारे लिए कभी कल्याणकारी नहीं होगा। राजवंश की मर्यादा भंग हो जाने का प्रभाव प्रजा की मर्यादा पर पड़ेगा–अवश्य पड़ेगा। महाराज यह भूल रहे हैं कि राजा प्रजा की शक्ति का केन्द्र-बिन्दु होता है। निहित स्वार्थों के पुजारी प्रतिनिधियों के बहकावे में आकर यदि प्रजा कुमार्ग की ओर अग्रसर हो, तो राजा को अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से उसका शमन भी करना पड़ता है। संसार की कोई शक्ति यह अधिकार उससे छीन नहीं सकती।

सोमेश्वर–और यदि राजा निरंकुश हो जाय?

कमला०–राजा के निरंकुश होने की आशंका ही यहाँ व्यर्थ है। धृष्टता क्षमा करें महाराज! अधिकार और कर्तव्य उभयपक्षीय स्थितियाँ हैं। राजा और प्रजा के बीच की कड़ी इसी भावना में निहित है कि दोनो का दोनों पर समान अंकुश हो। अपने कर्तव्यों की गुरुता को सही अर्थों में समझने और वहन करने वाला राजा सदा महत्तर होता है। इसलिए इस निर्णय को बदल देने पर महाराज को अपने निरंकुश होने का भय कदापि न होना चाहिए।

सोमेश्वर– *(मुस्कराते हुए)* माता की ममता में बड़ी शक्ति होती है। मुझे अब यह स्वीकार करने में बिल्कुल हिचक नहीं कि तुम्हारे इन तर्कों में हमारी परम्परागत भारतीय संस्कृति का प्राणतत्व बोल उठा है। अपने स्वप्नों के अनुसार आज मैंने भारत की भावी राजमाता के रूप में तुम्हारे जिस स्वरूप का परिचय पाया है, वह मेरे लिए गर्व की बात है। अपने वचन को पूरा करने का मोह त्यागकर पृथ्वी ने कल जो निर्णय दिया, उसके पीछे भी संस्कार तुम्हारे थे – केवल तुम्हारे। तुम सचमुच धन्य हो कमला ! अरे प्रतिहारी !

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी– *(विनत होकर)* आज्ञा महाराज।

सोमेश्वर–जाओ, देखो, महामात्य क्या कर रहे हैं। आज उनके आने में देर क्यों हो रही है !

प्रतिहारी– *(विनत होकर)* जो आज्ञा महाराज। *(प्रस्थान)*

कमलादेवी–महाराज ! आज मेरा जी न जाने क्यों रह-रहकर व्याकुल हो उठता है। राज्य में कहीं कुछ गड़बड़ तो नहीं हुई ? *(आकाश की ओर देखकर)* एकाएक गगन में यह धुन्ध-सी छाकर क्यों रह गई है ?

सोमेश्वर–यह सब कमला की कोमल प्रकृति का परिचायक है, अन्यथा सारी सृष्टि यथापूर्व चल रही है।

[महामात्य के प्रतिहारी का प्रवेश। झुककर पत्रिका समक्ष रखता है]

सोमेश्वर– *(प्रतिहारी से)* क्या बात है ?

प्रतिहारी–महामात्य ने महाराज की सेवा में यह पत्रिका भेजी है।

सोमेश्वर– *(पत्रिका को खोलकर देखते-देखते)* हूँ ! तो यह बात है ! *(प्रतिहारी की ओर देखकर)* और कुछ कहना है ?

प्रतिहारी–महाराज ! महामात्य ने कुछ ही देर में स्वयं सेवा में उपस्थित होने का सन्देश भेजा है।

सोमेश्वर–अच्छा, अब तुम जाओ।

[प्रतिहारी का प्रस्थान]

कमलादेवी– *(पत्रिका देखने के लिए झुकती-झुकती आश्चर्य से अभिभूत होकर)* इतने अधिक हस्ताक्षरों की पत्री यह कैसी है महाराज ?

सोमेश्वर–इक्यावन सामन्तों ने मिलकर अन्तरंग-सभा के निश्चय को पुनः विचारार्थ भेजा है।

कमलादेवी– *(हर्ष से)* भगवान् की कृपा के बिना ऐसा कभी नहीं होता महाराज। यह उसी की करुणाकोर है जो पृथ्वी की मान-रक्षा में किरण बनकर फूटी है।

सोमेश्वर–किन्तु महारानी, इन इक्यावन सामन्तों के इस विनम्र-निवेदन के अन्तरंग सूत्रधार महामात्य ही हैं। परदे की ओट में खड़े होकर अपनी संगठित शक्ति का परिचय देते रहना उनकी राजनीतिक कुशलता है।

कमलादेवी–पर इस राजनीतिक कुशलता का उपयोग उन्होंने युवराज के पक्ष में करके प्रकारान्तर से राजभक्ति का ही परिचय दिया है।

सोमेश्वर– *(हँसते-हँसते)* महारानी बड़ी भोली हैं। वह यह भूल रही हैं कि संगठन-शक्ति की यह गोपनीयता पारस्परिक संघर्ष की घड़ियों में कभी राजभक्ति के साथ विश्वासघात भी कर सकती हैं।

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी– *(सिर झुकाकर)* महाराज की जय हो।

सोमेश्वर–कहो, कहो, क्या बात है.?

प्रतिहारी–महाराज की सेवा में महामात्य पधार रहे हैं।

सोमेश्वर–मैं उन्हीं की प्रतीक्षा में हूँ।

[प्रतिहारी का प्रस्थान और महामात्य का प्रवेश]

कैमास–महाराज और महारानी को मेरा सादर अभिवादन है।

सोमेश्वर– *(मुस्कराकर)* कल्याण हो महामात्य! (निकट स्थान देने का संकेत कर) आसन ग्रहण करें।

[महामात्य बैठ जाते हैं]

कैमास– *(बैठते-बैठते महारानी की ओर देखकर)* महारानी का चित्त प्रसन्न तो है ?

कमलादेवी– *(मुस्कराकर)* महामात्य को जब मेरा इतना ध्यान रहता है कि रातोंरात राजनीति का मंच ही बदल जाता है, तब भी चित्त प्रसन्न न होगा तो कब होगा ?

[महामात्य गंभीर हो जाते हैं]

सोमेश्वर–महामात्य ने मेरा धर्म-संकट दूर करके अपनी नीतिमत्ता का सुन्दर परिचय दिया है। किन्तु भीतर-ही-भीतर अग्नि सुलगाने वाले बड़े-से-बड़े सत्ताधारी एक दिन उस अग्निकाण्ड में स्वयं भी जलकर राख बन जाते हैं जिसकी जन्मदात्री चिनगारी उनके हाथ में रहती है। यही कार्य जो महामात्य ने रात-भर में किया है, अगर सावधानी के साथ, शान्तिपूर्वक दो-चार दिन पूर्व किया होता तो क्या बात थी !

कैमास–महाराज क्षमा करें। जिस दिन युवराज का जन्म हुआ था, उसी दिन मेरा भी। यदि महाराज उनके जनक हैं तो युवराज मेरे आध्यात्मिक बन्धु हैं। उनकी कामना को मैं अपनी कामना समझता हूँ। मैंने जो कुछ किया, उन्हें अपना समझकर किया। रही भीतर-ही-भीतर अग्नि सुलगाने की बात, सो उसके मूल में मैं नहीं, वीर चामुण्डराय हैं। अभी दो दिन पूर्व उनके यहाँ मीर हुसेनख़ाँ और चित्ररेखा ने मिलकर संगीत और नृत्य-कला का जो मनोहर परिचय दिया, यह अवसर उसी की देन है। महाराज की प्रजा तथा उनके सभी वीर सामन्तों को जब एक ओर अतिथि-दम्पति ने मुग्ध कर लिया है, तब दूसरी ओर शरणागत की रक्षा का आश्वासन देकर प्रजावत्सल महाराज उनका अनादर कैसे कर सकते हैं !

सोमेश्वर– *(सामने रक्खी पत्रिका देख-देखकर हस्ताक्षर करते हुए)* मैं चामुण्डराय से ऐसी ही आशा करता था।... चलो, एक बहुत बड़ा संकट टल गया। महामात्य को मैं इसके लिए बधाई देता हूँ।

कैमास–यह सब महाराज का प्रताप है–मेरा कुछ नहीं।

[युवराज का प्रवेश]

सोमेश्वर—आओ पृथ्वी। मैंने सुना, रात तुमको नींद नहीं आई।

कैमास—आँखों से तो यही जान पड़ता है।

कमलादेवी—मैं जानती थी पृथ्वी, कि आकाश के ये काले बादल थोड़ी ही देर के लिए हैं। हुसेनख़ाँ की रक्षा के पक्ष में इक्यावन सामन्तों से एक-साथ विनय-निवेदन भिजवाकर महामात्य ने बड़ी नीति-कुशलता का परिचय दिया है।

पृथ्वीराज—*(गद्गद होकर)* सचमुच! *(हँसते-हँसते)* मैं तो इस समय महाराज से यह कहने आ रहा था कि वे अपना राज-काज स्वयं संभालें। इस छल-छद्म-भरे राजनीतिक पंक में मैं नहीं पड़ना चाहता।

सोमेश्वर—*(उठते-उठते)* राजनीति के मंच पर ऐसे दृश्य तो उपस्थित होते ही रहते हैं। हमारा गौरव इसी में है कि हम शान्तिपूर्वक अपने कर्तव्य पर डटे रहें और यह कभी न भूलें कि जिसको हम अन्धकार समझ रहे हैं, वह अंशुमाली की नियमित और निश्चित गति की उस आँख-मिचौनी का खेल है, जो घड़ियों के अन्तर से कभी प्रकाश और कभी अन्धकार बनता रहता है।

कैमास—महाराज से हम सदा ऐसे ही समन्वय की आशा रखते हैं।

[कमलादेवी, कैमास और पृथ्वीराज सोमेश्वर महाराज की ओर श्रद्धा से देखने लगते हैं और यवनिका गिरती है]

पञ्चम दृश्य

[अजमेर का राजप्रासाद। दिन के चार बजने का समय। राजसभा में भूमितल पर मूल्यवान् कालीन बिछे हैं। मख़मल के आवरण का महाराज सोमेश्वर का आसन है। मसनद पर रेशमी आवरण है, जिसके दोनों ओर ज़री का अलंकरण। आसन के पद-तल पर व्याघ्रचर्म है और उसके अन्दर अण्डाकार मुलायम लाल गद्दी। यत्र-तत्र धूपदानों से सुगन्धित वायु उड़ रही है।

सभा में सभी वीर-सामन्त विद्यमान हैं। महाराज सोमेश्वर के आने की प्रतीक्षा हो रही है। अनुचर-गण सामन्तों पर पंखा झुला रहे हैं। पान-इलायची, तम्बाकू, सौंफ-सुपारी से भरी सोने की तश्तरियाँ धीरे-धीरे सबके आगे आ रही हैं। राजसभा में उत्तरोत्तर चहल-पहल बढ़ रही है।

सभा में आज पहली बार सुलतान शहाबुद्दीन ग़ौरी के भतीजे मीर हुसेनख़ाँ पधारे हैं। आते हुए ज्योंही वे आसन ग्रहण करने लगते हैं, त्योंही कवि चन्द पर उनकी दृष्टि पड़ते ही यवनिका उठती है]

हुसेनख़ाँ– *(चन्द की ओर देखते हुए)* आदाब अर्ज़ चन्द साहब।

चन्द– *(झुककर)* आदाब अर्ज़ मीर साहब! कहिए हाँसी-हिसार की जागीर आपको कैसी पसन्द आई ?

हुसेनख़ाँ– *(प्रसन्नता से)* जागीर क्या है जागती हुई किस्मत है भाई जान! बाजरे की पैदावार उस इलाके में इतनी ज्यादा होती है कि फ़सल पर मेरा ख्याल है, पंजाब की सारी मंडियाँ उससे पूरी तरह भर जाती होंगी। और दूध-घी का तो कहना ही क्या है! बेगम इतनी तन्दुरुस्त कभी नहीं हुईं. जितनी आजकल हैं।

चन्द–चलो, मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आर्यभूमि में आकर आप पूर्ण सन्तुष्ट हैं।

हुसेनख़ाँ–जिसके सिर को आप जैसे नेकदिल शायर और पृथ्वीराज जैसे दरियादिल शाहज़ादे के पुरजोश बाज़ुओं का साया हासिल हो. उसकी तसल्ली और खुशी का क्या पूछना!

काका कान्ह—हमने आप की बड़ी प्रशंसा सुन रखी है हुसेन भाई। जिन सुन्दरदास खत्री के द्वारा आप ने महाराज की शरण में आने का सन्देश भेजा था, उनका कहना था कि ग़ज़नी-भर में न आप से बढ़कर कोई गायक था, न तीरंदाज़।

कैमास—और हमने आपकी प्रेयसी—ओ: क्षमा कीजियेगा—बेगम चित्ररेखा की तो और भी अधिक प्रशंसा सुनी है। सुन्दरदास जी का कहना था कि नृत्य-कला में उनकी निपुणता संसार की सुन्दरियों के लिए ईर्ष्या की वस्तु है।

हुसेनख़ाँ—*(सिर हिलाते हुए)* वह भी एक ज़माना था बन्दानवाज़! अगर किसी को, खिलते हुए गुलाब की कली की तरह नाज़ुक उम्र हो और खुदा ने खूबसूरती देने में कंजूसी न की हो, तो थोड़ी-सी भी कोशिश मशहूरी का एक बड़ा ज़रिया बन जाती है! वरना चित्ररेखा बानू अभी किस लायक हैं।

काका कान्ह—इधर कला और विनय—उधर संगीत और नृत्य! विचित्र संयोग है, मीर साहब, आप में। कहाँ सुलतान, कहाँ आप! ज़मीन-आसमान का अन्तर है।

चन्द पुण्डीर—*(गम्भीरता से)* इन बातों को सुनकर तो मैं इसी परिणाम पर पहुँचता हूँ कि सुलतान शहाबुद्दीन ग़ोरी एक असभ्य व्यक्ति है।

गोयन्दराय—असभ्य नहीं, पशु। जो अपनी संतान का सुख अपना सुख नहीं मानता, उसे मैं पशु की संज्ञा ही दे सकता हूँ।

चन्द—*(भौंह चढ़ाकर)* क्यों, मनुष्य ही तो बड़ा हो जाने पर प्राय: अभिमानी बन जाता है। यह मनुष्य ही तो है जो पद-मर्यादा बढ़ जाने पर, मित्र से परिचय कराने में अपने बाप को भी नौकर बतलाता हुआ लज्जित नहीं होता।

काका कान्ह—बाप और नौकर—विचित्र संयोग है! *(हँसता है)*

कैमास—आप लोग मनोविनोद के रंग में हैं। किन्तु मैं बहुत गम्भीरतापूर्वक कहता हूँ कि किसी दिन हम अपने इन दोनों नवीन कलाकार मित्रों का

सांस्कृतिक परिचय अवश्य चाहते हैं।

चन्द– *(प्रसन्नता से)* मेरी भी बड़ी कामना है।...हम लोग केवल कला के उपासक हैं हुसेन भाई। विश्वास कीजिए, आपको कष्ट देना हमारा कभी उद्देश्य नहीं हो सकता।

गोयन्दराय–क्षमा कीजिएगा मीर साहब। एक बात मेरी समझ में नहीं आई।

हुसेनख़ाँ–फ़रमाइए।

गोयन्दराय–जब वार्तालाप में आप इतने निपुण–इतने विनयशील हैं, तब ऐंकाएक सुलतान आपसे इतने असन्तुष्ट कैसे हो गये कि आपको ग़ज़नी से भागना पड़ा।

हुसेनख़ाँ–सरदार साहब, आप तो जानते हैं–एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। जब उनके लिए मेरे साथ चित्ररेखा का प्यार बरदाश्त से बाहर हो गया तो उस पर तो वे कुछ न बोले, पर मेरे पास फ़रमान भेज दिया कि या तो चित्ररेखा बानू से रिश्ता तोड़ दो और ग़ज़नी को छोड़ दो–या फिर मरने के लिए तैयार हो जाओ। और मौत लफ्ज़ (शब्द) तो बेमानी है क्योंकि जिसको मारा, हयात ने मारा!

कैमास– *(प्रसन्नता से)* वास्तव में आप कलाकार हैं! क्या बात कही आपने! ...जो हो, आपने बड़ी बुद्धिमानी का परिचय दिया, जो आप रातों-रात थोड़ी-सी सेना लेकर सपरिवार सीधे इधर चल दिये। ग़ज़नी के शाह द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य को बात-की-बात में लात मारकर वास्तव में आपने बड़े त्याग का परिचय दिया, और इस अनिश्चित अवस्था में अविलम्ब यहाँ आ जाना तो वास्तव में साहस का कार्य ही माना जायगा।

काका कान्ह–बुद्धिमत्ता और साहस–विचित्र संयोग है! ऐसा संयोग बड़े भाग्य से मिलता है।

गोयन्दराय– *(महामात्य से मन्द स्वर में)* जान पड़ता है, आज महाराज देर से आयेंगे।

कैमास–महाराज तो आयेंगे ही नहीं। हाँ, युवराज अवश्य आने वाले हैं!

[राजसिंहासन के पीछे पड़े हुए परदे से पृथ्वीराज के प्रकट होते ही

सरदार लोग उठने लगते हैं। फिर उनके आते ही एक साथ
'महाप्रतापी युवराज पृथ्वीराज की जय' –की ध्वनि गूँज उठती है]

पृथ्वीराज– *(हाथ जोड़कर सबको बैठ जाने का संकेत कर, महाराज के आसन से पृथक् एक ओर थोड़ा हटकर आसन ग्रहण करते-करते)* मेरी प्रतीक्षा में बैठे-बैठे आप लोग ऊब गये होंगे।

कैमास–नहीं युवराज, सौभाग्य से आज हमारे नवागन्तुक अतिथि मीर हुसेनख़ाँ राजसभा में पधारे हैं। उन्हीं से वार्तालाप चल रहा था।

पृथ्वीराज– *(हुसेनख़ाँ की ओर दृष्टि डालते हुए)* कहिए, हुसेन भाई! आप सानन्द तो हैं ?

हुसेनख़ाँ– *(सलाम करते हुए)* शाहज़ादा साहब की बड़ी मेहरबानी है।

कैमास–युवराज! मीर साहब से मैंने अभी एक प्रस्ताव किया था कि क़िसी दिन हम उनके स्वागत में एक जलसा करना चाहते हैं। मगर शर्त यह है कि उस समय वह अपनी प्रेमिका को भी साथ लाएँ और दोनों अपनी-अपनी कलाओं–संगीत और नृत्य–का भी परिचय देकर हमारा गौरव बढ़ाएँ।

पृथ्वीराज– *(मुस्कराकर)* मैं भी प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ।

काका कान्ह–मेरा एक संशोधन है। पहले उसे सुन लिया जाय, तो उत्तम रहेगा।

हुसेनख़ाँ– *(उत्सुकता से काका साहब की ओर देखते हुए)* फ़रमाइए।

पृथ्वीराज–हाँ, अब कह ही डालिए काका जी।

काका कान्ह–निवेदन यह है कि यह प्रश्न घर-गृहस्थी से विशेष सम्बन्ध नहीं रखता। इसका एक सांस्कृतिक महत्व है। इसलिए अच्छा हो कि चित्ररेखा का स्वतन्त्र अभिमत मँगवा लिया जाए। अगर उनको आपत्ति न हो तो इसे सहर्ष स्वीकार किया जाय।

[हर्ष-ध्वनि]

चन्द–मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूँ।

हुसेनख़ाँ– *(उठकर)* वैसे तो काका जी का संशोधन प्रशंसनीय है मगर इस

मामले को सीधे तौर से देखना मेरे ख्याल से मुनासिब न होगा। बेहतर हो कि यह मामला मुझ ही पर छोड़ दिया जाय। जब कभी ऐसा मौक़ा होगा तब मैं खुद ही अपनी सेवाएँ पेश कर दूंगा।

कैमास—ऐसी हालत में मैं अपना प्रस्ताव वापस लेता हूँ।

[प्रतिहारी का प्रवेश]

कैमास— *(परचा देखते हुए पृथ्वीराज के पास जाकर)* राजदूत सुधीर आ गये हैं युवराज। अच्छा हो, उन्हें यहीं बुला लिया जाय। *(युवराज का संकेत पाकर)* प्रतिहारी! उन्हें ले आओ।

[प्रतिहारी का प्रस्थान और क्षण-भर बाद राजदूत का प्रवेश]

सुधीर—महाप्रतापी युवराज की जय हो।

पृथ्वीराज— *(सिर विनत करते हुए)* कहो सुधीर, कोई नया समाचार?

सुधीर—महाराज! समाचार बड़ा चिन्ताजनक है। नागौर-विध्वंस के लिए शहाबुद्दीन सेना-सहित ग़ज़नी से चल दिये हैं। इस समय तक वह सिन्धु नदी पार कर चुके होंगे।

[कोलाहल]

पृथ्वीराज— *(गम्भीर होकर)* महामात्य और मेरे सच्चे सहायक वीर सामन्तो! आप ने देख लिया कि हमारी लाज कितने संकट में है! सारा देश आज खण्ड-राज्यों में विभाजित है। पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष इस सीमा तक पहुँचा है कि इस समय कहीं से भी सहायता की कोई किरण दिखलाई नहीं देती। ऐसी अवस्था में—मेरे वीर सामन्तो और साथियो, अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए प्राणपण से तत्पर हो जाओ। बलिदान की भूखी वसुन्धरा को कहीं यह उलाहना देने का अवसर न मिले कि अजमेर-राज्य के सामन्त कायर थे। दूर देश का शत्रु उनकी छाती पर लात मारकर राज्याधिकारी बन बैठा और वे अपनी गृह-देवियों के मोह-जाल में फँसे रहकर अपना विनाश अपनी इन आँखों से टुकुर-टुकुर देखते रहे।

[राजसभा के द्वार पर रण-दुन्दुभि भी बजने लगती है। उसकी समाप्ति पर समवेत स्वर में 'महाप्रतापी सोमेश्वर महाराज की जय'

की ध्वनि गूँज उठती है। सभासद् प्रस्थान करने लगते हैं।
रंगमंच के पार्श्व में पृथ्वीराज और हुसेनख़ाँ टहलते हुए]

हुसेनख़ाँ– *(रुककर)* शाहज़ादा साहब! आपने हमारे लिए जो तकलीफ़ उठाई है, उसका क़र्ज़ा अदा करने का मौक़ा आ गया है। एक हज़ार ज़हीर सिपाही मैं अपने साथ ले आया था, वे सब आपकी ख़िदमत के लिए तैयार रहेंगे और मेरा सिर तो आपके लिए हाज़िर है ही।

पृथ्वीराज– *(मुस्कराते-मुस्कराते गम्भीर होकर)* मैं भी आज सुलतान शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ौरी को बँधवाकर आपको ग़ज़नी का सुलतान बनाता हूँ।

[हुसेनख़ाँ चकित होकर पृथ्वीराज की ओर देखता है और यवनिका गिरती है]

०

षष्ठ दृश्य

स्थान—नागौर में युवराज्ञी इच्छारानी का शयन-कक्ष।

समय—सायंकाल लगभग पाँच बजे।

[पार्श्ववर्ती वृक्षों की चोटियों पर अस्तंगत सूर्य की अरुण आभा कक्ष से स्पष्ट दृष्टिगत हो रही है। वातायन खुले हैं और वायु मन्द गति से प्रवहमान है। द्वार-द्वार पर जो चिकें पड़ी हैं; कभी-कभी उनके उस पार से गौरैया बैठती और पुनः फुर्र-फुर्र करती उड़ जाती है। कभीं-कभी निकट से चूँ-चूँ का भी स्वर आ जाता है। शार्दूल-पदों की छवि वाले पर्यंक के आबनूसी पाये हैं, जिन पर चाँदी के पत्र जड़े हैं। ढाके की बनी रेशमी मच्छरदानी के पतले लट्ठे चाँदी के हैं। पर्यंक पर अष्टांगुल मोटाई का सुकोमल गद्दा बिछा है, जिस पर ज़री के काम का मनोहर रेशमी आवरण है। दीवारों पर जो प्रस्तर-खण्ड हैं, उन पर उड़ते हुए हंस तिरछी-सी पंक्ति बना रहे हैं। वे हंस भी एक क्रम से लघु, लघुतर और लघुतम हैं।

युवराज्ञी आज कुछ उद्विग्न हैं। एक परिचारिका जग्गो उनके निकट बैठी सिर में भृङ्गराज तैल की बूँदें मन्द गति से ठोंक रही है। एकाएक युवराज्ञी उठने लगती हैं—और यवनिका उठती है]

इच्छारानी—*(शय्या पर लेटे-लेटे उठती है)* रहने दे—रहने दे जग्गा! महाराज के पास जाकर देख तो सही, कोई समाचार आया है?

जग्गो—महारानी, मैं अभी वहीं से आ रही हूँ। समाचार मिला है कि हमारे सामन्त बड़ी वीरता से लड़ रहे हैं और युवराज तो ऐसे बाण बरसा रहे हैं जैसे सावन के जल-भरे बादल। चारों ओर जय-जयकार हो रही है, लेकिन सामना बड़ा विकट है महारानी जी। मुहम्मद ग़ौरी ने ठान लिया है कि इस लड़ाई में उनकी हार हो या जीत, हुसेनख़ाँ को दूसरे दिन का सवेरा देखने को नहीं मिलेगा।

इच्छारानी—जग्गो! तू नहीं जानती कि यह बात हमारे लिए कितनी लज्जास्पद होगी!

जग्गो—राजकुमारी पृथा दीदी तो कहती थीं कि जब लड़ाई होती है, तब कोई

यह नहीं देखता कि कौन मर रहा है, और कौन बच रहा है। मान लीजिए, चचा ने भतीजे को समाप्त ही कर दिया, तो ?

इच्छारानी—ऐसा न कह री जग्गो। तुझे विदित नहीं कि चित्ररेखा उन पर प्राण देती है।

जग्गो—भगवान् करे, ऐसा न हो। लेकिन अगर हो ही गया तो ?

इच्छारानी—रह-रहकर मुझे इसी बात का भय लग रहा है कि अगर मुहम्मद ग़ौरी के सरदारों ने हुसेनख़ाँ को जीवित न छोड़ा, तो फिर चित्ररेखा को वे लोग बन्दी बनाकर ग़ज़नी ले गये बिना क्या मानेंगे ? किसी तरह न मानेंगे।

जग्गो—अरे...अरे महारानी जी,...देखो, देखो, आकाश में तीर ऐसे उड़े जा रहे हैं, जैसे बरसते हुए बादलों की बूँदें धार बनकर आकाश-ही-आकाश में आड़ी-तिरछी होकर आर-पार हुई जा रही हों। ...हाय...हाय...वह देखो, वह देखो, किसी का सर भुट्टा-सा उड़ा जा रहा है और वह किसी की बाँह है। महारानी जी, महारानी जी, क्या युद्ध इतना निकट आ गया ? पृथा दीदी तो कहती थीं कि लड़ाई अभी कई योजन दूर है।

[पृथाकुमारी का प्रवेश]

पृथाकुमारी—भाभी ! भाभी !

इच्छारानी—कहो, कहो ! फिर कोई समाचार आया है क्या ?

पृथाकुमारी—समाचार तो विजय का ही है। युवराज भइया इतनी वीरता के साथ लड़ रहे हैं कि तातारख़ाँ की सेना हथियार छोड़कर भाग खड़ी हुई है। महामात्य कैमास ने ख़ुरासानख़ाँ को दबोच लिया है, लेकिन...

इच्छारानी—हे भगवान्, मैं ऐसा ही माँगलिक समाचार सुनना चाहती थी। प्राणेश विजय-पताका फहराते हुए धूमधाम के साथ घर लौट आयें तो मैं महाकाल को एक छत्र चढ़ाऊँगी—सोने का छत्र। मैं स्वयं उनकी शरण में जाकर मणियों का हार भेंट करूँगी। पर, पर राजकुमारी अभी कुछ कहते-कहते रुक गई थीं ! हाँ, फिर क्या हुआ ? हे भगवान्, मेरा हृदय धक-धक क्यों कर रहा है ?

जग्गो—*(झरोखे की ओर इंगित करती हुई)* महारानी जी, महारानी जी, उधर

देखिए, वह हंसों की जोड़ी उड़ी चली जा रही है। यह कितना शुभ है! विजय निश्चित हमारी होगी। और वह नकुल हमारी ओर कैसे एकटक देख रहा है।

पृथाकुमारी—(*देखती हुई*) वाह सचमुच! अहो मंगलमय, मंगल करो। पार्वतीनन्दन, कुशल करो। मातेश्वरी दुर्गे, विजय प्रदान करो। शंकर शंकर अभयंकर, आततायियों का ध्वंस करो, शत्रुओं का नाश करो।

इच्छारानी—अभी तक तो सब ठीक-ही-ठीक है राजकुमारी, लेकिन अभी तुम कुछ कहते-कहते रुक गई थीं, कम-से-कम तुम अपनी बात तो पूरी कर लो।

पृथाकुमारी—भाभी! मैं यही कह रही थी कि चारों ओर विजय करते हुए भी हमारी विराट् सेना हुसेनख़ाँ को न बचा सकी। मगर इसी समाचार के साथ एक बड़े ही हर्ष और आनन्द की बात हुई है। चामुण्डराय ने मुहम्मद ग़ौरी को ललकार कर कह दिया है कि आज मैं तुम्हारा अहंकार चूर-चूर किये बिना मानूँगा नहीं।

इच्छारानी—वाह राजकुमारी, तुमने बहुत ही आनन्द का समाचार दिया है! तुम्हारे मुंह में घी-शक्कर। तुम्हारे भैया, सानन्द और सकुशल विजयश्री लेकर लौटें, तो मैं तुमको मुंहमाँगी वस्तु भेंट करूँगी। जो तुम कहोगी, वह मैं तुम्हें दूंगी।

[महारानी कमलादेवी का प्रवेश]

कमलादेवी—बहूरानी! सन्ध्या होने को आई है। अब तक तो पृथ्वी शत्रु को बाँधकर दुन्दुभि बजाता हुआ लौट रहा होगा। अरी जग्गो! आरती का कंचन-थाल तो सजा ले। और देख, रूपा माली से कहना—नागौर में जितने भी फूल हों—सुगन्धित और सुन्दर, सबके हार जल्दी-से-जल्दी बना ले। मगर...मगर...एक बात सोचकर मेरे प्राण सहसा चिन्ता में पड़ जाते हैं कि हुसेनख़ाँ के खेत आने के बाद न जाने चित्ररेखा का क्या होगा। जाऊँ, एक बार भगवान् से प्रार्थना और कर आऊँ। ज्योतिषी जगज्जयोति ने तो कहा था कि मुहूर्त बहुत शुभ है। बहूरानी, विजय हमारी बिलकुल निश्चित

है। अरी पृथा, तु पृथ्वी के लिए चन्दन, अक्षत, रोरी, पुष्प, मिश्री, पान, धूप और सोने का थाल जल्दी से सजवा ले। जा बेटीरानी! ओह, एक बात भूल ही गई। प्रतिहारी! परिचारिका जयपत्ती को भेजकर तुरन्त शहनाई की व्यवस्था कर! ठहरो, ठहरो, मैं स्वयं महाराज के पास जाती हूँ। देखूं, वह क्या कर रहे है। हँ...अच्छी याद आई। वह तो प्राय: इस समय गीता पढ़ा करते हैं—

यत्र योगेश्वर: कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धर: ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ।।

[जग्गो का प्रवेश]

जग्गो—राजमाता जी, राजमाता जी, युवराज युद्धभूमि से लौट पड़े हैं। मुहम्मद ग़ौरी को अन्त में वीर सामन्त चामुण्डराय ने बन्दी बनाकर ही छोड़ा।

इच्छारानी—वाह! वाह री जग्गो! तूने बहुत सुन्दर समाचार सुनाया है।

कमलादेवी—*(कण्ठहार हाथ में लेकर)* ले, तुझे मैं यह हार पुरस्कार में देती हूँ। *(शंख-ध्वनि होती है)*

[इच्छारानी तथा महारानी आगे और पीछे-पीछे जग्गो, जयपत्ती आदि परिचारिकाएँ खड़ी होकर प्रार्थना करती हैं— 'मंगलमय, मंगल करो, विजयेश्वरी, विजय प्रदान करो।' शंखध्वनि और तीव्र होती है। प्रासाद के राजद्वार पर शहनाई गूँजती है और अन्त में महारानी कमलादेवी समवेत स्वर में उच्चारण करती हैं— 'मृत्योर्माऽमृतं गमय'।]

[यवनिका गिरती है]

सप्तम दृश्य

स्थान—अजमेर का कारागार।

समय—रात्रि के लगभग नौ बजे।

[द्वार पर लोहे का सीख़चेदार फाटक। दो प्रहरी सशस्त्र खड़े पहरा दे रहे हैं। एक प्रहरी उत्तर की ओर जाता है, तो दूसरा दक्षिण की ओर। अन्दर घास पड़ी है। एक चबूतरा दीवार से लगा है। बन्दी उसी पर बैठकर एक झरोखे से भोजन-सामग्री प्राप्त करता है। कारागार में आलोक बहुत ही मन्द है। बाह्य जगत् का नव-समीर भी यहाँ दुर्लभ है। ग्रीष्म ऋतु में और विशेषकर पावस में यहाँ मच्छर भी बढ़ जाते हैं। जीवन धीरे-धीरे पल-प्रति-पल क्षीण होता रहता है।

ग़ज़नी का सुलतान शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ौरी इसी कारागार में बँधा पड़ा है। उसे मच्छर काट रहे हैं। दंश के साथ ही ऊपर का चर्म फूल उठता है। मुहम्मद ग़ौरी जब एक दंश-स्थल को क्षीण प्रकाश में देखने लगता है तभी पृथ्वीराज प्रवेश करते हैं और यवनिका उठती है]

पृथ्वीराज—*(क्षण-भर स्थित रहकर मुहम्मद ग़ौरी को देखते-देखते)* कहो, ग़ज़नी के सुलतान शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ौरी! कहो, चित्त तो प्रसन्न है?

मुहम्मद ग़ौरी—कौन! *(घूर-घूरकर पृथ्वीराज की ओर देखता हुआ)* ओः शाहज़ादा पृथ्वीराज! *(धीरे-धीरे मुस्कराने की चेष्टा में)* सवाल खूब है। हम सुना करते थे कि हिन्दू बादशाह दुश्मन क़ैदी के साथ बहुत अच्छा सलूक किया करते हैं। आज उसकी एक ज़िन्दा मिसाल मेरे सामने है।

पृथ्वीराज—दुश्मन और क़ैदी! मैं किसी आदमी को दुश्मन नहीं मानता शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ौरी, और क़ैदी हो जाने पर तो कोई दुश्मनी बाकी रह ही नहीं जाती।

मुहम्मद ग़ौरी—सब बकवास है। व्यर्थ में अब तुम यह नीचतापूर्ण अभिमान करते हो। *(विकृत मुख से)* क़ैदी हो जाने पर अगर कोई दुश्मनी बाकी नहीं रह जाती तो फिर... *(अपने बंधनों की ओर संकेत करता हुआ)* मेरे साथ इस अमानुषिक बर्ताव का क्या मतलब है?

पृथ्वीराज–*(आवेश में आकर)* इसका मतलब अपने उस खूंख्वार दिल से पूछ, जिसने राजकुमार मीर हुसेनख़ाँ को क़त्ल कर डालने की धमकी ही नहीं दी, मेरे साथ युद्ध भी किया और अन्त में उसका काम तमाम करके छोड़ा। सगे भतीजे के साथ ऐसा बर्ताव! लानत है तेरी खून से भरी ऐसी बादशाहत पर!

चामुण्डराज–युवराज व्यर्थ ही ऐसे हिंसक और बर्बर व्यक्ति के मुँह लग रहे हैं। इसी तरह पड़ा रहने दीजिए। दो दिन में आप-से-आप बुद्धि ठिकाने लग जायगी।

पृथ्वीराज–इधर देख, काले नाग! *(दक्षिण दिशा की ओर तर्जनी उठाकर)* समाधि में सदा के लिए सोया हुआ वह शाहज़ादा भी तुझसे यही पूछ रहा है कि मेरे साथ इस अमानुषिक बर्ताव का क्या मतलब है?

मुहम्मद ग़ौरी–*(सिर हिलाता और थोड़ा मुस्कराता है)* समझ गया! सब समझ गया शाहज़ादा साहब!

पृथ्वीराज–क्या, क्या समझ गया?

मुहम्मद ग़ौरी–यही कि चित्ररेखा की सुन्दरता, कोमलता और सहृदयता ने आख़िरकार शाहज़ादा साहब पर भी कुछ जादू कर ही दिया। तभी तो उसके परदे में वह हुसेनख़ाँ से हमदर्दी रखने लगा था।

पृथ्वीराज–चुप रह पामर! तू मुझे भी अपने जैसा लम्पट समझता है!

मुहम्मद ग़ौरी–इतनी जल्दी नाराज़ हो गये शाहज़ादा साहब! सिर्फ़ इसलिए कि घटनाओं का उपहास विषैला होता है। मगर अफ़सोस, एक कैदी के साथ मुहब्बत के मामले पर बहस करते हुए आप को ज़रा भी लिहाज़ न हुआ। *(फिर अपने बन्धनो की ओर देखते हुए)* यही बातचीत क्या शाहज़ादा के गुप्त गृह में नहीं हो सकती थी। मगर मैं गलती पर हूँ, दुनिया के पर्दे पर यह बात कैसे प्रकट होगी कि अजमेर का शाहज़ादा बहादुर ही नहीं, शरीफ़ भी है।

पृथ्वीराज–दण्डनायक! इसके बन्धन खोल दिये जायँ।

चामुण्डराय–क्षमा करें युवराज! ग़ज़नी के सुलतान इस योग्य नहीं कि उनके

साथ शिष्टाचार निभाया जाय।

पृथ्वीराज– *(आवेश में)* चामुण्डराय! *(कथन के साथ भृकुटियाँ चढ़ जा[ती] हैं)*

[चामुण्डराय चुप रह जाते हैं और दण्डनायक मुहम्मद ग़ौरी के बन्धन खोलता है]

पृथ्वीराज– *(मुस्कराते हुए)* कहो, ग़ज़नी के वीर सुलतान शहाबुद्[दीन] मुहम्मद ग़ौरी! कहो, अब तुम क्या कहना चाहते हो?

मुहम्मद ग़ौरी–शाहज़ादे को शायद यह मालूम नहीं कि ग़ज़नी का सुलतान उ[न] पर हमला करने नहीं आया था। वह तो अपने भतीजे का खून बहाने आ[या] था जिसने अपने चचा की प्रेमिका को बहकाने और भगाने का जुर्म कि[या] था। और शाहज़ादे को शायद यह भी मालूम नहीं कि प्रेम और युद्ध के रा[स्ते] में सामने आने वाला राजा हो या रंक, पिता हो या पुत्र–होता हमेशा दुश्[मन] है।

पृथ्वीराज–अपनी इस बात को सत्य सिद्ध करने के लिए सुलतान के पास प्रम[ाण] क्या है?

मुहम्मद ग़ौरी–हैं-हैं! शाहज़ादा साहब को यह भी नहीं मालूम कि जिस आद[मी] से वह बात कर रहे हैं, वह गलतबयानी से कितनी नफ़रत करता है।

पृथ्वीराज–सुलतान की बात पर विश्वास नहीं होता।

मुहम्मद ग़ौरी– *(निःश्वास के साथ)* अफ़सोस कि विश्वास दिलाने वा[ली] चित्ररेखा धराशायी होकर हमेशा के लिए मिट्टी में मिट्टी हो गई है; जि[सके लहू] का हरेक कतरा धरती के अणु-अणु में मिल गया है। अब तक तो लहू ने पानी बनकर ज़मीन को गीला कर दिया होगा।

[आँसू गिराने लगता है]

पृथ्वीराज–जीवित रहने पर भी चित्ररेखा को सुलतान के साथ ग़ज़नी जा[ना] कभी स्वीकार न होता।

मुहम्मद ग़ौरी–ऐसा मत कहो शाहज़ादे–ऐसा मत कहो। इन्सान मर जाता [है] मगर इन्सानियत कायम रहती है। जिस्म खत्म हो जाता है, मगर रूह च[ारों] ओर चक्कर काटा करती है। शाहज़ादा साहब को अब क्या बता[ऊँ]

कभी-कभी तो मैं ऐसा स्वप्न देखने लगता हूँ कि चित्ररेखा धराशायी हो जाने पर भी अभी तक बहिश्त नहीं पहुँची, यहीं-कहीं उसकी रूह नतमस्तक होकर परविर्दिगार से अपने प्रेमी की भीख माँग रही है।

पृथ्वीराज–अगर इस बात में कुछ भी तथ्य होता तो चित्ररेखा कभी समाधिस्थ न होती। वास्तव में सुलतान के साथ उसका प्रेम कभी था ही नहीं।

मुहम्मद ग़ौरी–शाहज़ादा साहब! ऐसी बात न कहिए। चित्ररेखा कभी खुदकशी न करती, अगर उसको मुझसे खौफ़ न हो गया होता।

पृथ्वीराज–*(चामुण्डराय की ओर देखकर)* क्यों चामुण्डराय। तुम्हारी क्या धारणा है ?

चामुण्डराय–महाराज! सच-झूठ की राम जाने। पर मुझे यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं कि वह जानती थी कि सुलतान उसे क्षमा नहीं करेंगें।

मुहम्मद ग़ौरी–बस शाहज़ादा साहब। बहस यहीं खत्म हो जाती है क्योंकि यहीं उसने मुझको समझने में ग़लती की थी। उसको यह समझने का मौक़ा ही कहाँ मिला था कि इन्सानियत से बढ़कर मैं किसी को बड़ा नहीं मानता।

पृथ्वीराज–ग़ज़नी के सुलतान मुहम्मद ग़ौरी सोच समझ लें कि वे कया कह रहे हैं।

मुहम्मद ग़ौरी–मुहम्मद ग़ौरी इतना नीच कभी हो नहीं सकता कि आज वह कोई क़ौल (प्रतिज्ञा) करे और कल पलट जाय।

पृथ्वीराज–तो मनुष्यता को सुलतान धर्म से भी बड़ा मानते है ?

मुहम्मद ग़ौरी–खुदा न करे कि कभी इस बात का इमतिहान लेने की ज़रूरत पड़े। मगर कभी पड़ ही ज़ाय, तो शाहज़ादा साहब देखेंगे कि ग़ज़नी का सुलतान जान दे देगा मगर अपना कौलोक़रार (प्रतिज्ञा) नही छोड़ेगा–क़यामत (मृत्यु) तक भी नहीं छोड़ेगा।

पृथ्वीराज–*(पीछे देखकर)* दण्डनायक! ग़ज़नी के सुलतान आज से मेरे राजकीय अतिथि के रूप में राजभवन में रहेंगे।

[दण्डनायक मुहम्मद ग़ौरी के पीछे हो जाता है और आगे-आगे वह, साथ-साथ पृथ्वीराज, उसके पीछे चामुण्डराय, कारागार से बाहर होते हैं–यवनिका गिरती है]

• अष्टम दृश्य

समय—आठ बजे प्रात: काल ।

[इन्द्रप्रस्थ के महाराज अनंगपाल अपने एक कक्ष में विराजमान हैं। अवस्था लगभग ६० वर्ष। केश कुछ श्वेत, शरीर सुगठित, वर्ण गेहुआँ, मस्तक ऊँचा, आँखों के नीचे श्याम छाया, लम्बी नासिका, कनपटी की अस्थि में उभार, ऊपर उठकर घूमती हुई सघन मूँछें, कानों की मुरकियों में चमकते हीरे, कण्ठ में मोतियों का हार, दाएं हाथ की अनामिका में लाल और पन्ने की अँगूठियाँ, शरीर पर श्वेत अंगरखा, कमर में तलवार, घुटनों के नीचे तक स्वच्छ धोती, दाईं ओर धनुष और बाणों से भरा हुआ तूणीर।

धरा पर बहुमूल्य ग़िलम-ग़लीचे बिछे हैं। लाल मख़मल के आवरण का मसनद और सिंहासन चारों ओर स्वर्ण-शिल्प से अलंकृत है। ऊपर छत्र लगा है, जिसका चँदोवा कमख़ाब का है। सिंहासन के नीचे पदतल पर एक अण्डाकार चौकी है, जिस पर व्याघ्र-चर्म के बीच में लाल मख़मल की गद्दी रखी है। उसकी किनारी पर भी स्वर्णिम शिल्प है। कक्ष की चाँदनी में स्थल-स्थल पर स्वर्ण का अभिनव शिल्प है। स्थापत्य-कला में एक स्थल पर सारंग नृत्य कर रहा है, उसका पैर सर्प के मर्दित फण पर रखा है। कहीं हिरणी ग्रीवा घुमाये अपने शावक की देह सूँघ रही है, कहीं बाल भरत अनेक सिंह-शिशुओं के बीच में धनुष ताने खड़ा है। और कहीं भगवान् कृष्ण युद्धभूमि में पार्थ के सारथी बनकर इस तेजी से रथ चला रहे हैं मानों घोड़े आकाश में उड़ रहे हों। इन चित्रों में स्थल-स्थल पर मणि-माणिक्य, हीरा, मोती, पन्ना, पुखराज और नीलम विजड़ित हैं। महाराज के दाएं-बाएं मन्त्री तथा वीर सामन्तों के लिए अलंकृत कुर्सियों के अनेक आसन हैं। कक्ष के द्वार पर दोनों ओर स्फटिक के ऊंचे-ऊंचे आधारों पर मंगल-कलश हैं, जिन पर रखे हुए हरे-हरे आम्र-पल्लव सुशोभित हैं। पृष्ठ-भाग के खुले द्वार पर गंगा-जमुनी लहरों वाली चिक पड़ी है। रत्नाभरणों की जगमग ज्योति का प्रभाव पड़ते ही उस पर एक झलमली उत्पन्न हो जाती है। वातायन खुले हैं और पवन-झकोरे आ रहे हैं।

कक्ष में इस समय महाराज अनंगपाल के अतिरिक्त केवल आचार्य जगज्ज्योति व्यास उपस्थित हैं। शेष सभी आसन खाली हैं। व्यासजी के मुख पर आश्चर्य और महाराज के मुख पर उदासीनता की छाप है। पृष्ठ-भूमि से प्रात:-संगीत की मधुर ध्वनियाँ आ रही हैं]

अनंगपाल– *(अनिच्छा से)* मुझे अब संगीत में भी कोई रस नहीं मिलता आचार्य।

जगज्ज्योति–रस कैसे मिले महाराज ! जब जीवन में नित्य नई-नई उमंगों का गीत फूटता रहता है, तब संगीत भी आशाओं का झरना बनकर हमारे मानस को पुलक-प्राण देता है।

[दासी एक सोने की तश्तरी में पान, सौंफ़ और इलायची आदि ले आती है]

अनंगपाल– *(तश्तरी को आचार्य की ओर बढ़ाने का संकेत देते हुए)* तुमको याद होगा आचार्य, ऐसा भी समय था, जब रातें मुझे इतनी सुहावनी लगती थीं कि मैं सोचा करता था–जीवन की बातें चाहे व्यतीत हो जायँ, पर रातें ! रातें व्यतीत न हों।

जगज्ज्योति– *(तश्तरी से पान उठाते-उठाते हँसकर)* रातें भी तभी सुहावनी लगती हैं महाराज, जब उनके आगमन में नव-नव कामनाओं की मधुरिमा और अतीत में उज्ज्वल प्रात: की उदीयमान लालिमा का भान होता रहता था।

अनंगपाल– *(उदासीनता से)* वही रातें अब काटे नहीं कटतीं। आचार्य, आप विश्वास न करेंगे की कभी-कभी मैं सारी रात करवटें बदलता रह जाता हूँ, पर नींद... *(नि:श्वास)* नींद एक पल के लिए भी पलकें छूने नहीं आती।

जगज्ज्योति– *(मुस्कराते हुए)* नींद भी कभी-कभी धृष्ट हो उठती है महाराज ! वह उन्हीं की पलकें सहलाने जाती है जो नव-निर्माण के आयोजनों का एक मधुर स्वप्न देखते-देखते दिन-भर कर्तव्य-कर्म में डूबे रहते हैं। न जाने क्या बात है, महाराज ने इधर बहुत दिनों से मुझे किसी ऐसे स्वप्न की बात नहीं बतलाई।

अनंगपाल– *(जँभाई लेते हुए)* आज इसी निमित्त आपको कष्ट देना पड़ा है आचार्य। सारी रात मैं स्वप्न ही तो देखता रहा हूँ। सो भी एक-दो नहीं, तीन-तीन।

जगज्ज्योति–स्वप्न भी मानव-रचना में विधाता का एक चमत्कार है महाराज। वास्तव में स्वप्न मुझे बड़े प्यारे लगते हैं। लगता है, यह सारी सृष्टि एक

चरितार्थ स्वप्न है। देख कोई और रहा है, हम सब तो उसके पूरक मात्र हैं।

अनंगपाल—*(हँसते-हँसते)* मुझे भी ऐसा ही प्रतीत होता है। बल्कि सोचता तो मैं यह हूँ कि मेरी ही बात आपके कण्ठ से फूट पड़ी है.....।

जगज्ज्योति—*(मुस्कराते हुए)* कभी-कभी ऐसा हो जाता है महाराज, कि पानी कोई एक माँगता है पर गिलास किसी दूसरे के सामने जा पहुँचता है।....महाराज अपने स्वप्न की बात बतलाएँ।

अनंगपाल—*(तश्तरी से पान उठाकर)* हाँ, तो आचार्य, पहले मैंने देखा कि वृन्द-के-वृन्द तोमरगण दक्षिणापथ की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। सबके कण्ठों में लाल सुमनों की मालाएँ पड़ी हैं। एकाएक मालाएँ टूट-टूटकर भूमितल पर गिरने लगती हैं, यहाँ तक कि सारा राजपथ पहले सुमन-दलों से लाल हो उठता है, फिर आप-से-आप अन्तरिक्ष में लीन हो जाता है।

जगज्ज्योति—*(अमांगलिक आशंका से)* शिव-शिव! *(कुछ ठहरकर)* अच्छा फिर?

अनंगपाल—फिर सहसा मेरी निद्रा भंग हो गई। *(इलायची मुँह में डालते हुए)* भगवान् का नाम लेकर मैंने करवट बदली। थोड़ी देर में मुझे फिर नींद आ गई। तब मैंने देखा कि रानी के साथ मैं आकाश मार्ग से उड़ता-उड़ता एक तीर्थ-स्थान में पहुँचकर तप करने में निमग्न हो गया हूँ। शरीर धीरे-धीरे शिथिल हो चला है, वर्ष चल रहे हैं, काल-चक्र चल रहा है लेकिन तप का मेरा संकल्प अचल हो गया है।

जगज्ज्योति—*(प्रसन्नता से)* महाराज धन्य हैं।

अनंगपाल—*(सिर पर हाथ फेरते हुए)* फिर मेरी नींद उचट गई। पर जान पड़ा, उस समय भी दो घड़ी रात शेष रह गई है। अतएव करवट बदलते-बदलते मुझे फिर नींद आ गई। इस बार मैं क्या देखता हूँ कि यमुना के इस पार एक सिंह क्रीड़ा-कौतुक की अवस्था में है। तत्काल दूसरा सिंह यमुना के उस पार से तैरकर इस पार आ जाता है। और तब दोनों सिंह परस्पर मिलकर प्रेमालाप करने लगते हैं। इतने में आँख जो खुली तो देखता हूँ कि पूर्व दिशा में बाल अंशुमाली की लाल किरणावली फूट रही है, पक्षी

बोल रहे हैं और प्रात:कालीन शीतल मन्द समीर डोल रहा है।

जगज्ज्योति—स्वप्न तो एक-से-एक विचित्र है महाराज।

अनंगपाल— *(एक नि:श्वास, फिर दृष्टि ऊँची करके)* विधाता की रचना में सभी कुछ विचित्र है, प्रवर। जीवन में जब एक बार अमा-निशा का-सा अन्धकार छा जाता है, जब प्रकाश की कोई एक किरण-रेखा भी क्षितिज में कहीं फूटती दिखाई नहीं पड़ती, तब ज्योति होते हुए भी आँखें पथरा जाता हैं। *(दृष्टि को एक झटके के साथ जगज्ज्योति के समक्ष लाकर)* आपको यह विचित्र नहीं लगता क्या कि मैं वृद्ध हो चला, पर आज तक एक पुत्र का मुख देखने का अवसर मुझे नहीं मिला!

जगज्ज्योति—नहीं मिला महाराज। सचमुच यह बड़े दु:ख की बात है। पर विधि के विधान पर किसी का वश भी तो नहीं है।

अनंगपाल— *(उपेक्षा से मुँह बनाकर)* हूँ:, विधि का विधान! तुम इसको विधि का विधान कहोगे कि जिन महाराज विजयपाल ने इसी इन्द्रप्रस्थ को अपने आक्रमण से ध्वस्त कर मुट्ठी में कर लेना चाहा, उन्हीं के साथ मुझे अपनी पुत्री सुरसुन्दरी का विवाह कर देना पड़ा। जानते हो क्यों? क्योंकि मैं उन्हें एक सुदृढ़ सम्बन्ध में बाँधकर अपने राज्य-काल में एक स्थायी शान्ति चाहता था। और जिन अजमेर-नरेश सोमेश्वर चौहान की मित्रता के सहयोग से मैंने किसी प्रकार इन्द्रप्रस्थ की रक्षा की, अन्त में मुझे उन्हीं के हाथ में अपनी पुत्री कमला का हाथ समर्पित कर देना पड़ा। जानते हो क्यों? क्योंकि उनकी कृतज्ञता का भार-ग्रहण मुझे सहन न था।

जगज्ज्योति—महाराज! अपनी दोनों पुत्रियों के विवाह में आपने बुद्धिमत्ता का ही परिचय दिया है।

अनंगपाल— *(सिर हिलाकर)* उस बुद्धिमत्ता का मूल्य मैं समझता हूँ, आचार्य, जो व्यावहारिकता का नाम लेकर अपना समस्त आत्म-गौरव क्षण-भर में खो बैठती है।

जगज्ज्योति— *(अस्तव्यस्त होकर)* महाराज आज बहुत उद्विग्न दीख पड़ते हैं। इसलिए मेरे विचार से ऐसे समय इन स्वप्नों का फलाफल न कहना ही

श्रेयस्कर होगा।

अनंगपाल– *(सिर उठाकर दर्प के साथ)* अनंगपाल तोमर इतना भीरु नहीं कि तुम्हारे जैसे एक त्रिकाल-द्रष्टा मित्र के कठोर सत्य कथन को पचा न सके। जीवन की अन्तिम साँस तक मैं विधाता से यही कहता रहूँगा कि मेरी कोई इच्छा नहीं है, केवल तुम्हारी इच्छा पूर्ण होनी चाहिए।

जगज्ज्योति– *(प्रसन्नता से)* महाराज आप सचमुच धन्य हैं। महाराज के श्रीमुख से मैं यही सुनना चाहता था।

अनंगपाल– *(नि:श्वास को दबाते हुए)* सुनना तो अभी बहुत-कुछ पड़ेगा आचार्य व्यास को, पर उसमें अभी देर है। इसलिए अब तुम कह ही डालो जो तुम्हारे विचार में आये।

जगज्ज्योति–महाराज! स्वप्न में आपने जो दो सिंह देखे हैं, उनमें पहले आप स्वयं और दूसरे अजमेर-नरेश सोमेश्वर के पुत्र वीरवर पृथ्वीराज चौहान हैं। और विधाता का कुछ ऐसा विधान है कि आपका राज्य अब उन्हीं के पास जायगा।

अनंगपाल– *(आश्चर्य के साथ हँसकर)* अच्छा! ऐसी बात है!

[अकस्मात् चिक का पर्दा हिलता देखकर जगज्ज्योति उसकी ओर उत्सुकता से देखने लगते हैं। इतने में महारानी आ जाती हैं]

अनंगपाल– *(महारानी के आसन ग्रहण करते ही, हँसते-हँसते)* सुना तुमने प्राणाधिके, ज्योतिषाचार्य क्या कर रहे हैं?

महारानी– *(प्रसन्नता से)* सुना महाप्राण। मुझे तो इस विचार में सब उत्तम-ही-उत्तम जान पड़ता है। राजकुमार पृथ्वीराज इसके लिए पूर्ण अधिकारी तो हैं ही, साथ ही सब प्रकार से योग्य और समर्थ भी हैं।

अनंगपाल– *(गम्भीरता से)* खैर, अभी तो मुझे राजसभा से भी परामर्श करना है। अच्छा हाँ, अन्य दो स्वप्नों का फलादेश?

जगज्ज्योति–महाराज! स्वप्न में धर्मपत्नी सहित आप जो आकाश-मार्ग से उड़ते-उड़ते किसी तीर्थ-स्थान में पहुँचकर तप करने लगते हैं, उसका अभिप्राय यह है कि वास्तव में अब आप तप और साधना में लीन होकर

स्वर्गीय मोक्ष का परम पद प्राप्त करेंगे और तोमर बृन्द जो लाल पुष्प की माला धारण किये दक्षिणापथ की ओर प्रस्थान करते दिखाई पड़े हैं, उसका अर्थ यह है कि अब कालान्तर में तोमर वंश का ह्रास निश्चित है।

[एकाएक महाराज तथा महारानी चकित तथा हतप्रभ-से हो उठते हैं]

महारानी—महामति ज्योतिषाचार्य ! यह आप क्या कह रहे हैं ?

जगज्ज्योति—मैंने तो स्वप्न का फलादेश मात्र बतलाया है महारानी जी ! अपनी ओर से एक शब्द भी बढ़ाकर कहना मेरा धर्म नहीं।

अनंगपाल— *(उठकर)* अच्छी बात है ज्योतिषाचार्य, मेरा यह वज्र-कठोर वक्ष नियति का ऐसा दारुण दण्ड भी हँसते-हँसते सह लेगा पर अपने किसी पाप के लिए क्षमा नहीं माँगेगा। वह यम से भी अंचल फैलाकर कृपा की भीख नहीं माँगेगा, महाकाल से भी.....।

जगज्ज्योति—जय हो, महाराज अनंगपाल की जय हो।

[महारानी की आँखों में आँसू आ जाते हैं और यवनिका गिरती है]

द्वितीय अंक

प्रथम दृश्य

स्थान–नागौर का राज-प्रासाद।

समय–संध्या के लगभग सात बजे।

[महाराज सोमेश्वर के स्फटिक आसन पर एक बहुमूल्य ग़लीचा बिछा है जिसके उत्तर की ओर मख़मल से आवृत मसनद और कई गावतकिये हैं। द्वारों पर जो मेहराबें हैं, उनमें रंग-रंग के रेशमी परदे पड़े हैं। पार्श्ववर्ती दीवार पर ढाल-तलवार, धनुष और बाणों से भरा तूणीर टँगा है। चाँदनी के नीचे लटकते हुए दीपाधारों में वर्ण-वर्ण के लटकते हुए गुच्छे विविध रंगों की किरणें उत्पन्न कर उठते हैं। मुख्य द्वार पर मंगल-कलश सुशोभित हैं। कदली-पल्लव पवन-झकोरों से कभी-कभी झूम उठते हैं। युवराज राजसभा की प्राचीर के एक चित्र की ओर देख रहे हैं जिसमें यज्ञ के समय भगवान् राम जनकनन्दिनी की स्वर्ण-प्रतिमा के निकट खड़े हैं। म्लान-मुख पर राजीव-लोचनों से अश्रु झर रहे है। एकाएक बिना किसी के बुलाये युवराज को भान होता है जैसे कोई उन्हें बुला रहा है। इतने में यवनिका उठती है]

पृथ्वीराज– *(इधर-उधर देखकर मन्द स्वर में)* ओः ! मैंने समझा था कि कहीं कोई है, जो मुझे बुला रहा है। लेकिन यहाँ तो कोई नहीं है। निरन्तर मुझे ऐसा भ्रम हो जाता है–निरन्तर। लगता है, मैं किसी का आह्वान सुन रहा हूँ। अरे, फिर यह पग-ध्वनि।

[फिर पृथ्वीराज स्वर-दिशा की ओर उत्सुकता से देखने लगते हैं। और इतने में काका कान्ह आँखों पर सोने की पट्टी बाँधे समक्ष आ जाते हैं,

पृथ्वीराज– *(झुककर उनका अभिवादन करते हुए)* काका जी को प्रणाम।

काका कान्ह– *(थोड़ी दूर से)* विजय करो, सदा विजय करो युवराज ! *(पृथ्वीराज को निकट पाकर उनके कन्धे पर हाथ रखकर)* यहाँ अकेले खड़े हो या और भी कोई है ?

पृथ्वीराज– *(संकुचित होकर)* कोई नहीं है काका जी ! मैं अकेला एक चित्र को देख रहा था । मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे सदा के लिए समाधि में समाई हुई चित्ररेखा अपने प्रेमी हुसेनख़ाँ को पुकार रही है ।

काका कान्ह– *(हँसते-हँसते)* पृथ्वीराज और हुसेनख़ाँ–विचित्र संयोग है पृथ्वी । पर चित्र में ऐसी क्या बात है जिससे एकाएक तुम्हारा ध्यान चित्ररेखा पर जा पहुँचा ।

पृथ्वीराज– *(गम्भीर होकर)* यह मत पूछिए काका जी ।

काका कान्ह–क्यों ? इसमें संकोच की क्या बात है ?

पृथ्वीराज– *(सिर नीचा करके लजाते-लजाते एकाएक कुछ सोचकर सिर उठाते हुए)* काका जी, भगवान् राम के इन आँसुओं में मैं उनका प्यार देख रहा था । इसी क्रम में मैं साधारण मनुष्य के प्यार पर आ गया । आपको पता नहीं–हुसेनख़ाँ चित्ररेखा को कितना प्यार करता था । एक प्यार ही तो मनुष्य को विधाता की ऐसी अनोखी देन है जिसमें छोटे-बड़े का प्रश्न ही नहीं उठता ।

काका कान्ह– *(मन्द स्वर में)* आँसू और प्यार । इस संसार में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं जो इनकी उपेक्षा कर सके । *(कुछ सोचकर)* लेकिन जो व्यक्ति आँसुओं में प्यार देखता है उसकी परिष्कृत रुचि की हमें प्रशंसा करनी पड़ेगी ।

पृथ्वीराज–इस व्याज-स्तुति के लिए धन्यवाद काका जी, यद्यपि आप समझे नहीं कि आँसू का प्यार के साथ एक चिरस्थायी नाता होता है । जो राम निर्जन वन तक लक्ष्मण को साथ ले जाकर वहाँ सीता को अकेले छोड़ आने का निर्दय आदेश देते हैं, वही राम जब यज्ञ के समय सीता की स्वर्ण-प्रतिमा के सामने खड़े-खड़े आसूँ गिराते हैं तब इस मर्मान्तक वेदना में भी, प्रकारान्तर से, अपना सोया प्यार ही तो व्यक्त करते हैं । *(सिर ऊँचा करके)* काका जी, मैं उसी प्यार को देख रहा था ।

काका कान्ह– *(एक नि:श्वास के साथ)* समझता हूँ राजकुमार ! यह मत समझो कि प्यार का मर्म मुझे अब तुमसे सीखना पड़ेगा । आओ, थोड़ी देर

यहीं बैठकर बातें करें। *(दोनों महाराज सोमेश्वर के आसन की ओर ब लगते हैं)*

पृथ्वीराज– *(ठिठुक कर)* मगर यह आसन तो राज्य-व्यवस्था और न्या सम्बन्धी गुत्थियाँ सुलझाने का है ! यहाँ महाराज बैठते हैं। इस आसन प्रति मेरी श्रद्धा की जो अनन्य भावना है वह मुझसे कह रही है कि मैं इ समय इस पर कैसे बैठ सकता हूँ !

काका कान्ह–मुझसे बहुत बनो मत पृथ्वी। महाराज तुम्हारे पिता हैं और पि के आसन पर बैठने का अधिकार पुत्र को सदा रहता है।

पृथ्वीराज–रहता है, मानता हूँ काका जी ! मगर तब, जब ऐसी आवश्यक हो। इसके साथ-साथ मैं यह भी मानता हूँ कि इस आसन पर बैठने वा मेरे पिता अवश्य हैं, पर वह महाराज पहले हैं, मेरे पिता बाद में। यदि कोई अपराध करूँ, तो मेरे साथ भी महाराज का वही व्यवहार होगा जो ए साधारण प्रजाजन के साथ होना चाहिए, काका जी ! आप तो जानते महाराज उस समय यह नहीं देखेंगे कि अपराधी उनका पुत्र है।

काका कान्ह– *(हँसते हुए)* यह तुम ठीक कहते हो पृथ्वी। पर असमय तु आज यहाँ कैसे ?

पृथ्वीराज– *(संकुचित होकर)* काका जी, अगर कोई बात मैं आपसे भी गुप्त रखना चाहूँ, तो ?

काका कान्ह– *(कुछ सोचते हुए)* तो मैं इसके लिए बुरा नहीं मानूंगा पृथ्वी। किन्तु राजधर्म के अतिरिक्त ऐसा कोई कारण मुझे दिखाई नहीं पड़ता कि इस अवस्था में भी तुमको मुझसे कोई बात छिपाने की आवश्यकता हो।

पृथ्वीराज– *(टहलते हुए रुककर)* काका जी ! आपके चरणों के प्रताप से, जब से मैंने प्रथम युद्ध में ही विजय प्राप्त कर शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ौरी का गर्व चूर्ण किया है तब से राजधर्म के प्रति मेरी आस्था बढ़ गई है। मैं सोचता हूँ–उत्तरदायित्व के बिना आदमी का कोई मूल्य नहीं।

काका कान्ह–राजधर्म के प्रति बढ़ती हुई आस्था और उत्तरदायित्व का अनुभव–विचित्र संयोग है, पर तुमको पता है पृथ्वी, ये दोनों बातें

मिलकर किसके मन में एक स्वप्न न उत्पन्न करेंगी।

पृथ्वीराज–*(टहलते हुए रुककर)* उस स्वप्न को आप देखिए। वह आपका काम है। उत्तरापथ के खण्ड-राज्यों के प्रति मेरी कोई स्पर्द्धा नहीं। मैं ऐसा कोई स्वप्न नहीं देखता जिससे संसार को यह कहने का अवसर मिले कि पृथ्वीराज पृथ्वीभर में अपना राज्य स्थापित करना चाहता था।

काका कान्ह–तुम समझते होगे पृथ्वी, तुम्हारी इस नीतिमत्ता का रहस्य कोई समझ नहीं पाता है पर तुमको यह पता होना चाहिए कि दीपक के नीचे का अन्धकार किसी-किसी को दूर से ही स्पष्ट दिखाई दे जाता है।

पृथ्वीराज–*(गम्भीर होकर)* अन्धकार के साथ पृथ्वी का सम्बन्ध जोड़कर आप कहना क्या चाहते हैं काका जी?

काका कान्ह–*(त्वरा से)* वही–बिलकुल वही राजकुमार, जो आज सारा संसार कह रहा है। *(मन्दता से)* और इस बात में तो दो मत हो ही नहीं सकते कि संसार वही कहता है जो देखता है।

पृथ्वीराज–संसार तो सदा कुछ-न-कुछ कहता ही रहता है। पर संसार उसके विषय में क्या कहता है–इस बात की चिन्ता जिस प्रकार एक विचारक को नहीं होती–जिस प्रकार एक वेश्या को नहीं होती–ठीक उसी प्रकार उन थोड़े से व्यक्तियों को भी नहीं होती जिनका कर्तव्य पत्थर से भी कठोर और अग्नि से भी अधिक निर्मम होता है।

काका कान्ह–उस कठोरता की भी परीक्षा हो चुकी है पृथ्वी। संसार से अब यह बात छिपी नहीं रही कि युवराज ने अगर हुसेनख़ाँ को शरण न दी होती तो सुलतान शहाबुद्दीन ग़ौरी का नागौर पर कभी आक्रमण न होता।

पृथ्वीराज–काका जी! शरणागत की रक्षा करना हमारा धर्म ही नहीं, भारतीय संस्कृति का एक विशेष गुण रहा है। फिर क्या वह निर्णय मैंने अकेले किया था? क्या इसमें सम्पूर्ण राज्य का मत निहित न था काका जी? कैमास के साथ-साथ क्या महाराज का भी उसमें पूरा योग न था?

काका कान्ह–तुम कुछ भी कह लो पृथ्वी, पर हुसेनख़ाँ को शरण देना क्यों स्वीकार किया गया, यह एक ऐसा विषय है जो राजकुमार पृथ्वीराज की

प्रच्छन्न नीतिमत्ता पर विश्वास नहीं....।

पृथ्वीराज– *(बात काटते हुए)* सन्देह उत्पन्न करता है। यही न ?

काका कान्ह–हाँ, राजकुमार, बात तो वास्तव में यही है।

पृथ्वीराज–तो काका जी, उस सन्देह का कारण भी कदाचित् वह नारी चित्ररेख है, वह *(संकेत से बतलाते हुए)* जो अपने कलापूर्ण जीवन की सार लालसाओं को हृदय में छिपाये आज सदा के लिए समाधि में सोई पड़ी है रक्त-माँस तो कदाचित् गल-गल पर गीली मृत्तिका में विलय हो गय होगा, किन्तु उसकी स्वर्गस्थ आत्मा आज संसार की गिनी-चुनी सत नारियों के साथ मस्तक ऊँचा किये गर्व के साथ खड़ी-खड़ी मुस्करा रही है

काका कान्ह– *(हँसते-हँसते)* अब यह विवाद का विषय है युवराज, कि चित्ररेखा वास्तव में सुलतान शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ौरी की प्यारी राजनर्तकी थी, या उसके भतीजे हुसेनख़ाँ की प्रेयसी होने के नाते एक सती नारी लेकिन यह बात तो बिलकुल निर्विवाद है कि युवराज की सहानुभूति चित्ररेखा को प्राप्त थी।

पृथ्वीराज– *(आवेश के साथ)* तो काका जी, आपका भतीजा यह पृथ्वीराज ऐसे प्रत्येक विद्रोही का सम्मान करता है जो मानवता की रक्षा के लिए जर्जर रूढ़ि, परम्परा और दासत्व के विनाश को सदा तत्पर रहता है और समय आने पर हँसते-हँसते अपने प्राण तक न्योछावर कर देता है। चाहे वह को हो, और संसार उसे कुछ भी समझता हो।

काका कान्ह– *(हँसते-हँसते पीठ ठोककर)* पृथ्वीराज! तुम वास्तव में धन्य हो। मैंने केवल मनोविनोदवश तुम्हारी भावना को उत्तेजित कर दिया था। आशा है, तुम इसका बुरा न मानोगे। अच्छा!

[कथन के साथ काका कान्ह प्रस्थान करने लगते हैं, इतने में राजप्रासाद के नीचे एक पथ-गायक की स्वर-लहरी गूँज उठती है]

'फूलों की देह बनाकर भी प्राणों में हाय व्यथा भर दी'

पृथ्वीराज–काका जी! थोड़ा ठहर जायँ–इस पथ-गायक का पूरा गीत सुन लें।

[दोनों प्रासाद के आगे के छज्जे पर खड़े होकर पथ-गायक का गीत सुनने लगते हैं]

फूलों की देह बना कर भी, प्राणों में हाय व्यथा भर दी।
तुमने निर्झर को दिये गान, नगपति को हरियाली दे दी।
तारों के दीपक नभ को दे, रजनी की छवि काली कर दी।
मानस को सपने देकर भी, जीवन में करुण-कथा भर दी।
फूलों की देह बना कर भी, प्राणों में हाय व्यथा भर दी।
इतनी भी तुमने बुद्धि न दी, मानव मृत्युञ्जय हो जाता।
इतनी भी तुमने शक्ति न दी, वह भावी पर जय पा जाता।
नित-नित नवतृष्णा देकर भी, परिणति में असफलता भर दी।
फूलों की देह बना कर भी, प्राणों में हाय व्यथा भर दी।

काका कान्ह– *(गीत की समाप्ति पर)* गायक कहता तो ठीक है पृथ्वी।

पृथ्वीराज– *(अनिच्छा से)* हाँ, कह लीजिए, ठीक कहता है। लेकिन इसके कथन में उपालम्भ है, समन्वय नहीं, कोई योजना नहीं; केवल निराशा है और निराशा स्वयं एक पराजित वृत्ति है।

काका कान्ह– *(मुस्कराते हैं)* कवि और निराशा–विचित्र संयोग है। *(रुक कर)* कुछ भी हो पृथ्वी, भगवान् एक दिन तुम्हारी आशाएँ अवश्य पूरी करेगा।

पृथ्वीराज–काका जी! बस आप का यही आशीर्वाद सदा चाहिए।

[दीवार टटोलते हुए काका कान्ह का प्रस्थान और क्षण-भर बाद प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी–घणी क्षमा, युवराज! ग़ज़नी का गोपाल गायक श्रीमान् से मिलना चाहता है।

पृथ्वीराज–तुरन्त भेजो!

[प्रतिहारी के प्रस्थान पर गायक का प्रवेश]

गोपाल–महाप्रतापी युवराज की जय हो।

पृथ्वीराज–आओ, गोपाल गायक, मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था।

गायक–मैं आ तो पहले ही जाता महाराज, पर रास्ते में मेरी साँडनी थक बहुत गई थी। इसलिए फिर मुझे बीच में रुक जाना पड़ा।

पृथ्वीराज–हूँ, तो यह बात है। यह तुमने अच्छा किया गायक। और कहो, ग़ज़नी के क्या समाचार हैं? सुलतान शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ौरी कुशल से

तो हैं ?

गोपाल—महाराज ! और सब तो ठीक है पर उनको यहाँ के सभी गुप्त समाचार मिलते रहते हैं।

पृथ्वीराज—अच्छा, उनको यहाँ के सभी गुप्त समाचार मिलते रहते हैं। आश्चर्य ! *(कुछ सोचकर)* जैसे ?

गोपाल—हुसेनख़ाँ को श्रीमान् ने जब अपने यहाँ शरणागत के रूप में रख लिया तब यह समाचार वहाँ तुरन्त पहुँच गया था।

पृथ्वीराज— *(आश्चर्य से)* तुरन्त पहुँच गया था ! *(मन्द स्वर में)* हाँ, हो सकता है; क्योंकि अरबख़ाँ कुछ ही दिनों में सुलतान का सन्देश लेकर यहाँ आ पहुँचा था। *(पुन: साधारण स्वर में)* अच्छा और ?

गोपाल—और महाराज का जो जन्मोत्सव मनाया गया उसका समाचार भी सुलतान को मिल गया था। फिर महाराज जब आखेट को गये, तब भी उनको इसकी सूचना मिल गई थी। यहाँ तक कि गुप्तरूप से महाराज पर आक्रमण करने की बात भी उठी थी; पर सुलतान के कई सरदारों के घाव पूरी तरह भर भी नहीं पाये थे इसलिए फिर तैयारी रुक गई।

पृथ्वीराज— *(नि:श्वास)* तुमने बड़ी चिन्ता में डाल दिया गायक।

गोपाल—जो वास्तविक स्थिति है महाराज, वही मैंने बतलाई है। अब मेरे लिए जो आज्ञा हो।

पृथ्वीराज—तुम कल मुझसे फिर मिलो गायक। जो कुछ तुमने वार्ता में कहा है—उसको लिखकर दो। *(मन्द स्वर में)* मैं इस विषय में किसी को क्षमा नहीं करूँगा।

गोपाल—जो आज्ञा महाराज। *(प्रस्थान)*

पृथ्वीराज—यदि हमारे देशवासी प्रलोभन में पड़कर, शत्रुओं को अपने देश का रहस्य बतला देने का साहस करें तो हमारी शासन-व्यवस्था के लिए यह बड़ी लज्जा की बात होगी।

[यवनिका गिरती है]

द्वितीय दृश्य

स्थान–महारानी कमलादेवी का अपना कक्ष।

समय–प्रातः काल।

[महारानी के रजत-पर्यंक के पाये शिरोभाग पर स्वर्णमंडित हैं। उसी से लगी उत्तरी दीवार पर भगवान् तथागत का एक ऐसा चित्र बना है जिसमें वह रुग्णा वासवदत्ता का कुष्ठ रोग शान्त करने पधारे हैं और वासवदत्ता मूर्छित पड़ी है। दूसरे चित्र में दुखिया शकुन्तला अपने लाल भरत को अपने हाथ से दूध-भात खिला रही है। उसकी दृष्टि में एक उदासी–एक सूनापन है और महाराज दुष्यन्त दूर खड़े उसे देख रहे हैं। एकाएक महारानी पर्यंक से उठती हैं और छज्जे पर आकर देखने लगती हैं और कभी अलमारी में रखे सोने-चाँदी के खिलौनों की पंक्ति बनाने लगती हैं, कभी वीणा के किसी तीव्र स्वर वाले तार को छेड़ देती हैं और कभी पर्यंक के सिरहाने रखा पुष्पहार सूँघकर पूर्ववत् रख देती हैं। इसी समय उनकी दृष्टि द्वार पर जा पड़ती है–जहाँ पृथ्वीराज का प्रथम पग देहली के भीतर आता है और यवनिका उठती है]

कमलादेवी– *(पृथ्वीराज को कक्ष के अन्दर आता देखकर)* आ पृथ्वी, मेरे लाल। भगवान् तेरी दीर्घायु करें। आज मेरी बहुत दिनों की साध पूरी हुई। महाराज ने तुझे इन्द्रप्रस्थ का राज्य समर्पित करने की उदात्त भावना प्रकट की है। महाराज से तुझे सारा समाचार मिला ही होगा।

पृथ्वीराज– *(प्रसन्नता से)* माता जी, तभी तो इस अवसर पर मैं आपके इन पावन चरणों की रज लेने आया हूँ। *(झुककर कमलादेवी के चरण छूते हुए)* इन्हीं के प्रताप से मुझे यह शुभ संयोग मिल रहा है।

कमलादेवी– *(पृथ्वीराज को वक्ष से लगाकर उसके सिर पर हाथ फेरती हुई)* भगवान् करे अशोक महान् की भाँति तेरा घर-घर पूजन तथा अभिवादन हो। जैसे अजमेर-राज्य में तेरा यश, नाम तथा शौर्य दिशि-दिशि व्याप्त हो गया है, वैसे ही एक दिन सम्पूर्ण आर्यावर्त्त में तेरी कीर्ति-दुन्दुभि बजने लगे। *(आनन्दाश्रु आ जाते हैं)*

पृथ्वीराज–माता जी! मुझे विश्वास हो रहा है कि आपके इन चरणों के प्रताप

से सभी कुछ सम्भव है।

कमलादेवी– *(सिर के बालों में हाथ फेरते-फेरते)* बेटा! न जाने कितनी मनौतियों के बाद तो मैंने तुझे अपनी कोख में धारण किया, फिर न जाने कितनी प्रार्थनाओं के पश्चात् तेरा जन्म हुआ। जन्म लेने के कुछ ही दिनों बाद मैंने सुना कि हमारे राज्य के कीर्ति-वयोवृद्ध सामन्तों के घरों में भी सौ पुत्र एक ही दिन एक ही घड़ी में उत्पन्न हुए।

पृथ्वीराज–सचमुच माता जी! महामात्य कैमास, कविराज चन्द, वीर सामन्त चामुण्डराय, चन्द पुण्डीर आदि सभी लोगों की जन्मतिथियाँ वही हैं जो मेरी हैं!

कमलादेवी–हाँ बेटा! सचमुच ऐसी ही बात है और मैं मानती हूँ कि ऐसा बड़े ऊँचे भाग्य से होता है। न जाने पूर्वजों के कितने पुण्य-प्रताप उदय हुए जो ऐसे शुभ मुहूर्त में मेरी कुक्षि से तूने जन्म लिया। ....एक बात कहूँ, पृथ्वी! मैंने यह बात आज तक नहीं कही, महाराज से भी नहीं। मेरी बड़ी लालसा थी कि कण्व-कन्या शकुन्तला ने जैसे अपनी कोख से भरत को जन्म दिया वैसे ही, उसी के समान प्रतापी, वीर और महापुरुष मेरी कोख से भी जन्म ले। सच्ची बात तो यह है कि मन-ही-मन मैं शकुन्तला से ईर्ष्या करती रही। पर आज मेरे मन की वह ईर्ष्या भी जाती रही। लगता है जैसे विधाता ने मेरी सम्पूर्ण साध पूरी कर दी हो।

पृथ्वीराज–माता जी! आपने तो आज ऐसी बात बताई है कि जिससे मैं अपने उत्तरदायित्व को बहुत बड़ा समझने के लिए विवश हो गया हूँ। इसी वार्ताक्रम की कड़ी के रूप में एक बात मैं भी कह दूं?

कमलादेवी–कह तू पृथ्वी! आज तेरे मन में जो कुछ आये, कह डाल।

पृथ्वीराज–माता जी! माता जी! जब से मैंने सुधि सँभाली है तब से मेरे मन में कभी कोई बड़ी इच्छा नहीं उत्पन्न हुई और यदि कभी उत्पन्न भी हुई, तो बिना किसी विघ्न-विरोध के साधारणरूप से ही पूरी हो गई। अब तक के जीवन में असन्तोष का अवसर ही नहीं मिला। लेकिन इस बात का ध्यान मुझे सदा बना रहा कि एक तो मेरी कोई महत्वाकांक्षा नहीं है और अगर है

भी तो केवल इतनी कि देश के जन-जन की आशा मैं पूरी करता रहूँ। कभी किसी साधारण देशवासी को भी यह कहने का अवसर न मिले कि युवराज ने मेरी बात नहीं सुनी, उसने मेरी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया।

कमलादेवी—बस पृथ्वी, बस। मेरी यदि कोई कामना है तो यही—और इतनी ही है कि सम्पूर्ण देश की साधारण-से-साधारण जनता की, हमारी सुखी-दु:खी प्रजा की एकमात्र आशा बनकर तू रहे; एकमात्र रक्षक बनकर तू राज्य करे और एकमात्र उसी, उसी की कामनापूर्ति की शक्ति तेरे तन, मन, प्राण और जीवन का आदर्श हो। *(आँसू भर आते हैं)*

पृथ्वीराज—माता जी! माता जी! भगवान् करें कि आपका यह मंगलस्वप्न साकार बनाने में मेरा जीवन व्यतीत हो।....पर एक बात है माता जी, कभी-न-कभी अगर मुझसे कोई भूल हो ही जाय, तो उसका संकेत कर दीजिए और हो सके तो उसे मेरी भूल मानकर क्षमा कर दीजिए! मगर नहीं, नहीं, माता जी, क्षमा न करना। उसका शोध करा लेना मुझसे ही। जिसमें और किसी को मेरे प्रति चाहे जितना उपालम्भ रहे, पर भगवान् से मेरी विनय है कि आपको न हो—केवल आपको न हो।

जग्गो— *(दौड़ती हुई आकर)* महारानी जी, महारानी जी! युवराज महाराज हो गये। *(पृथ्वीराज की ओर देखकर एकाएक सिर नीचा कर)* मैं कैसे कहूँ, कैसे बताऊँ कि कितने-कितने लोगों के सोये भाग्य आज जाग गये हैं। *(आँखों में आँसू भरकर)* पर महाराज बनकर आप मुझको तो न भूल जायेंगे?

पृथ्वीराज—नहीं जग्गो, तुझे कैसे भूल सकूंगा। जब तक तू मेरे पैर दाबती-दाबती एक-एक उँगली न चटका देगी तब तक मुझे नींद ही कैसे आयेगी!

जग्गो—बस महाराज, आज मैं कृतार्थ हो गई और मेरी सेवाओं का पुरस्कार मुझे मिल गया।

पृथ्वीराज—नहीं जग्गो। पुरस्कार? *(अपनी अनामिका और कनिष्ठिका से रत्नजटित मुद्रिकाएँ उतारते हुए)* ले, भगवान् चाहेगा तो ऐसे पुरस्कार

समय-समय पर तुझे बराबर मिलते रहेंगे।

कमलादेवी—ले, जग्गो, मेरा हार तू ले जा। आज मेरा पृथ्वी पृथ्वीराज बन गया है। इससे बढ़कर आनन्द का अवसर मेरे लिए दूसरा और क्या होगा?

जग्गो— *(अपनी साड़ी के अञ्चल से आनन्दाश्रु पोंछती हुई पृथ्वीराज से)* मैं तो आप से यह कहने आई थी कि राजसभा-भवन में आज महाराज अनंगपाल की विदाई और आपका अभिषेक होगा। सैनिकों को सहस्र पंक्तियाँ आपके दर्शनों की प्रतीक्षा में खड़ी हैं और शत वीर सामन्त अपनी श्रद्धा की भेंट समर्पित करने की बाट जोह रहे हैं। महाराज अनंगपाल आपको स्मरण कर रहे हैं।

पृथ्वीराज—अच्छा, माता जी! आज्ञा दीजिए। आशीर्वाद के रूप में तो मैं इतना कुछ पा गया हूँ कि अब मुझे कुछ भी माँगना शेष नहीं रह गया। सब कुछ मुझको प्राप्त हो गया, सब कुछ।

[कमलादेवी पृथ्वीराज के सिर पर हाथ रखती हैं और पृथ्वीराज उनका पुनः चरण-स्पर्श करते हैं]

कमलादेवी— *(सिर से लेकर पीठ तक हाथ फेरती हुई)* जुग-जुग जियो मेरे लाल, सदा सफल रहो और सदा विजय करो।

[पृथ्वीराज का प्रस्थान। पार्श्ववर्ती दर्शक-कक्ष में जयपत्ती मिल जाती है]

जयपत्ती—युवराज! नहीं, नहीं, घणी क्षमा महाराज! आज से आर्य महाराज हो गये हैं। इससे बढ़कर प्रसन्नता की दूसरी घड़ी और कौन-सी होगी।

पृथ्वीराज— *(अपने बाएँ हाथ की मुद्रिकाएँ निकालते हुए)* ले जयपत्ती, इस अवसर पर तेरे लिए यह छोटा-सा पुरस्कार है। *(जाने लगते हैं)*

जयपत्ती—महाराज! मैं यह पुरस्कार नहीं चाहती। मैं तो यह प्रार्थना करती हूँ कि महाराज मुझे भी अपनी सेवा का अवसर दें।

पृथ्वीराज—जयपत्ती, मैंने पहले ही सोच लिया है कि तू मेरे साथ जाएगी। जब तक मुझे नींद न आती थी, तब तक मेरा व्यजन-दोलन न मन्द होता था न बन्द होता था। *(जाने लगते हैं)*

जयपत्ती—जाएँ महाराज, महामात्य और बड़े महाराज आपकी प्रतीक्षा कर रहे

हैं। मगर, मगर, लेकिन, किन्तु, परन्तु महाराज, मैं यह कहने आई थी कि अन्तःपुर में अपने कक्ष में सम्राज्ञी के यहाँ से भी होते जाएँ।

[महाराज मुस्कराते हैं। पार्श्ववर्ती संगीत की प्रथम पंक्ति गूंजने लगती है–]

'सजनवा सोने की एक घड़ी'

[तभी यवनिका गिरती है]

तृतीय दृश्य

स्थान—महाराज अनंगपाल का सभा-भवन।

समय—प्रातः काल लगभग सात बजे।

[पंक्तिबद्ध दर्शकों की सहस्रों कुर्सियाँ, बीच-बीच में दण्डनायकों तथा व्यवस्थाधिकारी व्यक्तियों के आवागमन के लिए मार्ग, पुष्प-गुच्छों तथा बन्दनवारों से सुशोभित भवन, मुख्य द्वार पर प्रलम्ब पल्लवों के झूमते कदली-स्तम्भ। सभा-भवन की सीढ़ियों पर दोनों ओर विशालकाय गमलों में स्थापित ताड़-पत्र और पवन-गति के साथ हिलते पत्र-पुष्प। सभा-पवन के खम्भों पर कहीं शृंग-सहित मृग-मुख टँगे हैं, कहीं व्याघ्र-मुख। यत्र-तत्र नाना प्रकार के आदर्श वाक्यों के वस्त्र-लेख सुशोभित हैं।

—जन-जन का सौख्य, शान्ति और सन्तोष ही राज्य की वास्तविक उन्नति है।

—यदि सेवा नहीं कर सकते तो जीवन व्यर्थ है।

—त्याग से बढ़कर कोई धर्म नहीं और दान से बढ़कर कोई कर्म नहीं।

—स्मृति जीवित रहे तो मृत्यु को भी रोना पड़े।

दाईं ओर दीवार पर एक विशालकाय चित्र बना है जिसमें सपेरा मरा पड़ा है और सर्प खड़ा है तथा भगवान् तथागत निकट खड़े एकटक दोनों को देख रहे हैं। राज्य के पदाधिकारियों, सामन्तों, सम्भ्रान्त पुरुषों, अध्यापकों, साहित्यिकों और महिलाओं से भरपूर अलग-अलग विभागों का सामूहिक जनरव। एकाएक घड़ियाल बजता है और जनरव शान्त हो जाता है। यवनिका उठती है]

कैमास—राज-राजेश्वर परम माननीय महाराजाधिराज महाराज अनंगपाल, प्यारे सामन्तो और बन्धुओ, माताओ एवं देवियो! आज का दिन न केवल चौहानवंश की परम्परागत कीर्ति के लिए, न केवल महाराज सोमेश्वर के लिए, और न केवल राजमाता कमलादेवी के लिए ही परम सौभाग्य का द्योतक है, बल्कि व्यक्तिगत रूप से मेरे लिए और सामूहिक रूप से सम्पूर्ण भारतवर्ष के लिए भी गौरव, उत्साह और आनन्द-प्रदायक है। अभी तक युवराज पृथ्वीराज अजमेर-नरेश महाराज सोमेश्वर के संरक्षण में अजमेर

का राज-काज सँभालते थे। आपको विदित ही है कि अनेक बार उनको अपने विवाहों के उपलक्ष्य में युद्ध-क्षेत्रों में भी जाना पड़ा है। प्रत्येक बार कितनी वीरता और कुशलता से उन्होंने बड़े-से-बड़े शत्रु का सामना किया और प्रत्येक बार उन्होंने उन युद्धों में विजय प्राप्त की। जब यह बात हम सोचते हैं तो गौरव से हमारा मस्तक एकदम ऊँचा उठ जाता है।

[करतल-ध्वनि]

–*(पुन:)* यह कितने सौभाग्य की बात है कि आज से युवराज पृथ्वीराज हम सबके लिए महाराज पृथ्वीराज ही नहीं सम्राट् पृथ्वीराज हो गये हैं।

[पुन: करतल-ध्वनि]

–मेरे लिए तो इस प्रसन्नता का एक व्यक्तिगत कारण भी है। आप लोगों को विदित है कि महाराज पृथ्वीराज का जन्म उसी दिन हुआ था जिस दिन मेरा *(हास्य)*। इस प्रकार महाराज मेरे आध्यात्मिक बन्धु भी हैं और आप लोग यह भी जानते हैं कि अपने बन्धु को ऊँची-से-ऊँची सीढ़ी पर देखते हुए कितनी प्रसन्नता होती है. . . .जहाँ तक प्रजा-वत्सलता का सम्बन्ध है आप सभी लोग—और हमारे राज्य की जनता तो विशेष रूप से—महाराज पृथ्वीराज के शील, सौजन्य और न्याय-प्रतिपादन से परिचित है और अब तो उनका उत्तरदायित्व और भी बढ़ गया है। सच्चे वीरों और महापुरुषों की परीक्षा तभी होती है, जब उन पर उत्तरदायित्व का विशेष भार आ पड़ता है। मुझे पूर्ण आशा है कि महाराज इस भार को बड़ी दृढ़ता और आत्मीयता, गम्भीरता और साथ ही सदाशयता के साथ निभायेंगे। अन्त में यही मेरी कामना है कि महाराज चिरंजीवी हों और उनका यश अजर-अमर हो।

[करतल-ध्वनि]

–अब महाराज अनंगपाल युवराज पृथ्वीराज का राजकीय अभिषेक कर उन्हें अपना उत्तराधिकारी सम्राट् बनाये जाने की घोषणा करेंगे।

[आरती के स्वर्ण-थाल में पंचदीप, हरिद्रा, अक्षतं, पुष्पहार, नारियल आदि मांगलिक पदार्थ रखे हुए हैं। आचार्य जगज्ज्योति व्यास और राजगुरु आदि वेद-ध्वनि कर रहे हैं। राज-द्वार पर शहनाई बज रही है और राज-सिंहासन के एक

ओर युवक और दूसरी ओर युवती कन्याएँ शंखध्वनि कर रही हैं।

महाराज अनंगपाल राजमाता सहित पहले पृथ्वीराज के सिर पर ज़री की पगड़ी रखते हैं, फिर मस्तक पर तिलक करके पुष्पहार पहनाते हैं। तत्पश्चात् स्वर्ण-पत्र-मंडित नारियल भेंट करके कमर में लटकाने के लिए उनको असि प्रदान करते हैं और अन्त में अमोघ बाणों से भरा तूणीर देकर अपने राज्य-प्रदान की घोषणा करते हैं]

अनंगपाल—आदरणीय राजगुरु, राजपुरोहित, वीर सामन्तो, देवियो और बन्धुओ! पारब्रह्म परमात्मा की असीम कृपा से ऐसी शुभ घड़ी और पावन वेला आ गई कि आज मैं अपना समस्त राजकीय उत्तरदायित्व, अधिकार और पद अपने दौहित्र चिरंजीव पृथ्वीराज को समर्पित कर उसको सम्राट् बनाने की घोषणा करता हूँ। मनुष्य-जीवन में सुख-दुःख, भाव-प्रभाव और अभाव का कुछ ऐसा समन्वय है कि संसार का कोई प्राणी इस बात का दावा नहीं कर सकता कि मुझे जीवन के प्रति कोई किसी प्रकार का उपालम्भ नहीं है। आप सब लोगों को विदित है कि सम्राट् होने पर भी मेरी गणना *(निःश्वास के साथ)* संसार के उन्हीं प्राणियों में है। मैंने जीवन में बहुत-कुछ देख लिया, बहुत सुख पाया और समय-समय पर चिन्ता, व्याकुलता और नाना प्रकार के दुःखों का भी अनुभव कर लिया। अब मुझे कोई आकांक्षा नहीं रह गई, सिवाय इसके कि जिस निर्माता ने मेरी रचना की, मुझे जन्म दिया, उसी की इच्छा-पूर्ति में मेरा यह जीवन-दीपक भी मिल जाय, विलय हो जाय। आज का यह शुभ दिन मेरी इस कामना की अन्तिम किन्तु अमर ज्योति है। चिरंजीव पृथ्वीराज कितने मेधावी और वीर हैं, यह बात मेरे कहने की नहीं। आप सभी बन्धु और सम्पूर्ण देश इससे परिचित है।

[करतल-ध्वनि]

जन-जन के हृदय में उन्होंने अपना स्थान बना लिया है। आज मेरी प्रसन्नता की सीमा नहीं है। मेरी धारणा है कि अपने राज्य और समस्त प्रजाजन का भाग्य मैं उन शक्तिशाली कन्धों और वज्र-कठोर हाथों में सौंप रहा हूँ, जो मुझसे कहीं अधिक समर्थ और योग्य हैं। यह सत्य है कि भावी प्रबल होती है और मनुष्य उसके सम्मुख सदा दुर्बल रहता है परन्तु यह भी

सत्य है कि मनुष्य की दुर्बलता ही भावी को प्रबल बनाती है। मनुष्य यदि जीवन से हार न माने, तो एक-न-एक दिन उसी की कामना भावी का रूप धारण कर लेती है। मैं समझता हूँ कि यही मनुष्य की सबसे बड़ी विजय है। मैं अपना कर्तव्य-भार त्याग रहा हूँ। इसका यह आशय नहीं कि मैं जीवन से हार मान रहा हूँ। मेरी धारणा है कि किसी-न-किसी प्रकार मेरा कर्तव्यं, मेरा उत्तरदायित्व उत्तम-से-उत्तम ढंग से निष्पन्न हो। इसका एक श्रेयस्कर साधन, उपाय और मार्ग आज मेरे सामने है। अब कुछ इनी-गिनी घड़ियों के बाद मैं सपत्नीक तीर्थयात्रा को प्रस्थान कर दूंगा। प्रस्थान की मांगलिक बेला में आप सबके उत्तरोत्तर उत्थान की ही मेरी एकमात्र कामना है। भगवान् करे, मेरा पृथ्वीराज अब आप सबका पृथ्वीराज बनकर रहे और इस आसन पर मैंने जिस दीपक की प्रतिष्ठा की है वह सदा ज्योतिर्मय बना रहे। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय'।

[करतल-ध्वनि के साथ महाराज पृथ्वीराज गम्भीर मुद्रा में उठकर खड़े हो जाते हैं।]

पृथ्वीराज— *(हाथ जोड़कर)* पूज्य मातामह, आचार्य, राजगुरु, राजपुरोहित, महामात्य, वीर सामन्तो, देवियो और बन्धुओ ! आज का दिन सचमुच मेरे लिए महाभाग्य का दिन है। इसलिए नहीं कि मुझे एक बहुत बड़े ऐश्वर्य-भोग का अवसर मिल रहा है। *(मुस्कराते हुए)* क्षमा करें, इसलिए भी नहीं कि मेरी पदोन्नति हो गई है, मैं युवराज से एकदम ऊँचा उठ कर सम्राट् बन गया हूँ, वरन् इसलिए कि नाना जी ने मुझे ऐसे गुरुतर कार्य के योग्य समझा। और अपने मन की बात मैं आपको बता दूं कि मुझे सबसे अधिक प्रसन्नता तब होती है जब मेरी परीक्षा ली जाती है। *(हँसते हुए)* समझ में नहीं आता, आप मुझे सम्राट् बना रहे हैं या मेरी परीक्षा ले रहे हैं।

[करतल-ध्वनि]

—इस अवसर पर मुझे प्रसन्नता इस बात की भी है कि एक-से-एक बढ़कर अनुभवी गुरुजन, मेधावी परामर्शदाता और शताधिक वीर सामन्तों का बल मुझे प्राप्त है। भगवान् करे, मैं नाना जी की आशाओं को पूरा और चरितार्थ करने में सदा समर्थ बना रहूँ और आप का बल निरन्तर पाने योग्य मैं अपने को बनाये रखूं।....

इस अवसर पर मैं केवल एक बात और कहना चाहता हूँ और वह यह कि ऐश्वर्य-भोग मेरे जीवन का उद्देश्य नहीं है। प्रजा एवं जनता की आकांक्षा पूरी करते रहना, सदा उसकी सुरक्षा का ध्यान रखना, जन-जन की सुविधा, शांति, सौख्य और सुव्यवस्था को मुख्य रखना, यही मेरी कामनाएँ हैं। इसी में ही मैं अपने जीवन की सफलता और विजय समझता हूँ। भगवान् न करें कि कोई ऐसा दिन आये, जब मेरे प्रति जनता का विश्वास शिथिल हो। पर दुर्भाग्य से यदि कभी ऐसा ही संयोग आ गया तो मैं यह चाहूँगा कि मेरे प्राणों की हानि चाहे हो जाय, पर मेरे देश की हानि कभी न हो! कभी न हो!! शांति और रक्षा का मेरा कर्तव्य सदा पूरा होता रहे। चाहे मेरा जीवन-दीपक स्नेहहीन हो जाए पर मेरे देश के जन-जन के जीवन में सदा आलोक बना रहे।

[करतल-ध्वनि]

—चाहे मेरे व्यक्तिगत जीवन के सामने अंधेरा ही आ जाय, पर मैं सदा प्रकाश की ओर बढ़ता ही जाऊँगा और सदैव जन-जीवन को प्रकाश देता रहूँगा—यही मेरा एकमात्र उद्देश्य है। अन्त मे मैं नाना जी और नानी जी के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। मुझे आशा है कि उनकी तीर्थ-यात्रा की सफलता मेरी जीवन-यात्रा की विजय-कामना में स्नेह के साथ-साथ बल देती रहेगी; आलोक देती रहेगी!

[करतल-ध्वनि]

कैमास—अब इस समय का कार्यक्रम तो समाप्त होता है। आज सायंकाल राजकीय प्रीति-भोज में मैं आप सब को सम्मिलित होने के लिए सा[दर] निमन्त्रण देता हूँ। रात्रि में जो नाटक और महोत्सव होंगे, आशा है, आप सब लोग उनमें उत्साह से भाग लेंगे और महाराज राजराजेश्वर अनंगपाल की तीर्थ-प्रस्थान-बेला में उनको विदाई देकर उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि भेंट कर हमको आभारी करेंगे। सम्राट् अनंगपाल की जय हो!

[समवेत नारा लगता जाता है]

चन्द—सम्राट् पृथ्वीराज की जय!

[समवेत नारा लगता है! यवनिका गिरती है]

चतुर्थ दृश्य

स्थान—पृथ्वीराज का जन-सम्पर्क-कक्ष।

समय—सायंकाल लगभग आठ बजे।

[महाराज पृथ्वीराज अपने आसन पर बैठे हुए कुछ पत्र-पत्रिकाएँ उलट रहे हैं। निकट ही उनके राज्य-लिपिक धर्मायण खड़े हैं। महाराज के सामने कुछ अन्तर से एक हुक्का रखा है, जिस पर बेल-बूटों का स्वर्णालंकरण है। सटक का आवरण भी सोने के तारों के कलात्मक रूप से सजा हुआ है। अधर-स्पर्शिनी नह सोने की है जिसमें बहुमूल्य रत्न, पन्ना और पुखराज के नग जड़े हुए हैं और खमीरा सुवासित है। चिलम का स्वर्ण अरुण आभा झलकाता रहता है। कक्ष के सम्मुख द्वार के ऊपर जगदीश्वरी दुर्गा मैया का अष्टभुजी चित्र है। मैया जिस सिंह पर विराजमान है, वह अपनी जिह्वा निकाले हुए है। दूसरी ओर नकुल सर्प के युद्ध का एक चित्र है। परिचारिका जयपत्ती व्यजन डुला रही है। सामने एक ब्राह्मण शास्त्रीजी बैठे हैं। पत्र-पत्रिका पर हस्ताक्षर कराकर धर्मायण चला जाता है और यवनिका उठती है]

पृथ्वीराज—कहिए शास्त्रीजी, कैसे पदार्पण हुआ आपका ?

शास्त्रीजी—महाराज ! देश-देशान्तर भ्रमण करते-करते मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि आर्य से बढ़कर प्रतापी न तो कोई सम्राट् इस धराधाम पर अब तक उत्पन्न हुआ है और न भविष्य में कभी होगा।

पृथ्वीराज— *(मुस्कराकर)* शास्त्रीजी ! मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि आपको किसी कवि ने बहका दिया है।

शास्त्रीजी—महाराज ! मुझे कवि तो कभी बहका ही नहीं सकते क्योंकि मैं कवि को संसार के लिए भार-स्वरूप समझता हूँ।

पृथ्वीराज— *(मुस्कराते हुए)* आपने चन्द कवि का नाम तो सुना होगा ?

शास्त्रीजी—चन्द भी कोई कवि है ? जो व्यक्ति किसी की प्रशंसा के गीत लिखकर अपना जीविकोपार्जन करता हो, उसकी गणना मैं कवियों में नहीं, बन्दीजन में करता हूँ।

[पृथ्वीराज गम्भीर हो जाते हैं]

पृथ्वीराज—और जो पहली ही भेंट के प्रथम वाक्य में ही किसी की आरती उतार लगता है उसको आप क्या कहेंगे ?

शास्त्रीजी—चाटुकार मूर्ख या परम मेधावी। महाराज, मूर्ख नहीं जानता कि मौखिक प्रशंसा का अर्थ है—फँसाना और अपना स्वार्थ साधन करना। औ मूर्ख इसी सस्ते उपाय का आश्रय लेता है। पर मेधावी के लिए सूर्य को सू कहने में कभी संकोच नहीं होगा—वह जानता है कि सत्य कथन में को अपराध नहीं है।

पृथ्वीराज— *(गम्भीरता से)* और यही कार्य यदि कोई कवि करे तो उस अपराध क्यों और कैसे लग जाता है ?

शास्त्रीजी—क्योंकि वह अपनी वाणी को अर्थोपार्जन का साधन बनाकर अप आत्म-विश्वासों की हत्या करता है।

पृथ्वीराज—यह बात आपको चन्द के सामने कहनी पड़ेगी। अच्छा, शास्त्रीजी आपने कैसे कृपा की ?

शास्त्रीजी—मैं एक बार नहीं, हज़ार बार पूनम के चन्द से कह चुका हूँ—तू कलं है।

[पृथ्वीराज हँस पड़ते हैं]

शास्त्रीजी—महाराज ! मैं कोई आकांक्षा लेकर आपकी सेवा में नहीं आया। याचक नहीं, भिक्षुक नहीं, मैं तो एक साधारण ब्राह्मण हूँ। संसार की से मेरा धर्म है। जैसे कुछ अपने से बन सके, उसके अनुरूप सतत कुछ-न-कु करते रहना मेरा स्वभाव है। इसीलिए मैं भगवान् से कभी कोई याच नहीं करता। उसके प्रति मेरी यही भावना रहती है कि मुझे कुछ न चाहि चाहिए भी तो केवल यह कि तेरी इच्छा पूर्ण हो। बस !

पृथ्वीराज—आपका दर्शन प्राप्त करके वास्तव में मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अ के जगत् में ऐसे व्यक्ति ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलते। मैं अपने-आप को ब सौभाग्यशाली समझता हूँ जो आपने दर्शन देने का कष्ट उठाया। पर बात अब तक मेरी समझ में नहीं आई कि परोपकार तो अर्थकारी विद्

नहीं, फिर आपका जीवन-यापन कैसे होता है ?

शास्त्रीजी–महाराज ! मैं जीवन का यापन नहीं, अर्पण करता हूँ। जैसे काल के माप में पल की एक स्थिति है, वैसे ही जीवन के माप में एक बूंद की। जैसे प्रासाद के माप में ईंट, पाषाण और लौह-स्तम्भ की एक स्थिति है, वैसे ही धरणी के माप में एक रजकण की। महाराज ! मेरी स्थिति भी एक पल, एक बूंद और एक कणमात्र है।

पृथ्वीराज– *(मुग्ध होकर)* कहो, कहते जाओ ब्राह्मण, मुझे ये बातें बड़ी प्रिय लग रही हैं।

शास्त्रीजी–महाराज ! मैं धीरे-धीरे जगन्नियन्ता के चरणतल पर सतत और निरन्तर उसी का अर्पण करता रहता हूँ। इस समर्पण से आप-से-आप जो मिल जाता है, वही यथेष्ट हो जाता है। सन्तोष मेरी गति है, आनन्द मेरी साँस। शान्ति मेरा हास है, तृप्ति मेरी काया। चाहता हूँ कि पैसा यदि कभी मेरे पास न भी हो तो भी मेरा काम न रुके, कोई आकांक्षा न रहे।

पृथ्वीराज–अच्छा शास्त्रीजी ! आपने अपना यह जो परिचय दिया, क्या इसमें किसी प्रतिक्रिया का हाथ नहीं है ? क्या किसी प्रकार की निराशा उससे ध्वनित नहीं होती ?

शास्त्रीजी–नहीं होती आर्य, किसी प्रकार नहीं होती। मैं चाहता हूँ कि मेरा जीवन-घट चाहे एक-एक बूंद घटता-घटता रिक्त होता चला जाय, किन्तु जो करुणा-सागर हैं, उनकी मोह-निद्रा कभी भंग न हो। मेरा परिवार चाहे दाने-दाने के लिए तरस-तरसकर सदा के लिए सो जाय, पर उनकी महासृष्टि के इस पावन जगत् में धनाधीशों और कुबेरों का कोष ज्यों-का-त्यों बना रहे। महाराज, मेरे प्रथम गीत की प्रथम पंक्ति है–
'मेरे लिए कुछ भी नहीं – मेरे लिए कुछ भी नहीं।'

पृथ्वीराज– *(आँखों में आँसू भरकर)* ओः अब समझा–अब सब कुछ समझ गया ब्राह्मण। अच्छा, इस समय तो आप कृपा करके मेरी अतिथिशाला में विश्राम करें। कल फिर भेंट होगी। *(आँसू पोंछते हैं)*

शास्त्रीजी–जो आज्ञा महाराज।

[शास्त्रीजी का प्रस्थान । प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी– *(विनत होकर)* घणी क्षमा, महाराज ।

पृथ्वीराज–कहो, क्या बात है ?

प्रतिहारी–महाकवि चन्द पधारे हैं ।

पृथ्वीराज–उन्हें तुरन्त सम्मान के साथ ले आओ ।

प्रतिहारी– *(विनत होकर)* जो आज्ञा महाराज ।

[प्रतिहारी का प्रस्थान । चन्द कवि का प्रवेश]

पृथ्वीराज–आओ कवि, पधारो । मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था ।

चन्द– *(आसन ग्रहण कर)* कहिए, सब आनन्द तो है महाराज ?

पृथ्वीराज–कवि का प्रताप...समस्त कार्य विधिवत् चल रहा है । हाँ, अभी एक तपस्वी ब्राह्मण आया था । उसका प्रवचन सुनकर मेरा हृदय हिल गया चन्द । मुझे पता नहीं था कि संसार में ऐसे भी दुःखी प्राणी रहते हैं ।

चन्द– *(उत्सुकता से)* माधवभट्ट तो न था ?

पृथ्वीराज–हाँ, कदाचित् वही हो ।

चन्द–महाराज ! कहीं उसकी बातों में न आ जायँ । उसकी वाणी में बड़ा प्रभाव है । बोलने लगता है तो ऐसा जान पड़ता है मानो कालिदास की सन्तान हो । पर आजकल उसका मस्तिष्क कुछ विकृत हो गया है । डर लगता है कहीं वह पागल न हो जाय ।

पृथ्वीराज– *(पुनः आँखों में आँसू भरकर)* संसार को ऐसे पागलों की बड़ी आवश्यकता है चन्द । तुम नहीं जानते, दुःख और दारिद्र्य का सतत सहन मनुष्य को क्या बना डालता है !

चन्द–महाराज कहते तो ठीक ही हैं पर उदारता, दान और दक्षिणा की भी एक सीमा होती है । जो कोई भी विद्वान् बनकर आ जाय, उसी को महाराज अपना राजकोष लुटा दें, मैं इसे उचित नहीं समझता ।

पृथ्वीराज–आज कहा सो कहा, पर फिर कभी मुझसे ऐसी हीन बात न कहना चन्द । पृथ्वीराज का राजकोष फिर है किस दिन के लिए ! शत-शत वर्षों के

अनंतर—युग-युगान्तर के पश्चात् जब न हम रहेंगे, न तुम रहोगे, तब भी उस तपस्वी ब्राह्मण की यह वाणी इस राजभवन में गूंजती रहेगी– 'जैसे काल के माप में पल की एक स्थिति है, वैसे ही जीवन के माप में एक बूंद की। जैसे प्रासाद के माप में एक ईंट, पाषाण और लौह-स्तम्भ की एक स्थिति है, वैसे ही धरणी के माप में एक रजकण की। महाराज! मेरी स्थिति भी एक पल, एक बूंद और एक कणमात्र है'।

[चन्द सोच में पड़ जाते हैं और यवनिका गिरती है]

पञ्चम दृश्य

स्थान—कन्नौज-नरेश जयचन्द की राजकुमारी संयोगिता का शृंगार-कक्ष।

समय—रात्रि के लगभग नौ बजे।

[राजकुमारी संयोगिता एक अभिनव पर्यंक पर बैठी है। सुकोमल मखमल का आवरण जिसकी किनारी पर स्वर्णालंकरण है। सामने नाना पुष्पों के गुच्छे, कलियाँ, हरी-हरी पत्तियाँ, सोने-चाँदी के सलमे-सितारेमय शृंगार-दान, इत्र की शीशियाँ तथा मनुष्याकार दर्पण हैं। एक परिचारिका 'वासन्तिका' व्यजन डुला रही है। दूसरी सुनयना संयोगिता की वेणी में जुही की कलियों का माल-बन्धन कर रही है। धूपाधारों में अगरुबत्तियाँ सुवासित धूम्र उड़ा रही हैं। रत्नालंकृत दीपाधार आलोकित हैं। पवन-डोलन से रत्नों के षट्कोण लटकन झूल रहे हैं। उनसे नाना रंगों की आलोक-किरण फूट-फूटकर एक झिलमिली उत्पन्न कर रही है। एक ओर दीवार पर ऐसा चित्र है जिसमें शकुन्तला प्रथम बार महाराज दुष्यन्त को देखते-देखते संकुचित हो उठती है। उसकी रूप-छवि, सौंदर्य-गरिमा इतनी महिमामयी है कि महाराज दुष्यन्त के तृषित नयन मुग्ध हो जाते हैं। ज्योंही संयोगिता दर्पण के सम्मुख खड़ी होती है त्योंही यवनिका उठती है]

सुनयना—*(जुही की कलियों का हार वेणी के ऊपर सजाती हुई)* एक बूंद-मात्र है, एक कण-मात्र है राजकुमारी, *(चिबुक से हाथ लगाती हुई)* इस चन्द्र के आगे *(आकाश की ओर संकेत करती हुई)* वह चन्द्र पूर्णिमा की चाँदनी संकोच के मारे विनतवदना जान पड़ती है। न जाने कब वह दिन आयेगा जब राजकुमारी के ये मृगनयन महाराज की प्रतीक्षा में मंगल-हेतु बन जायेंगे।

संयोगिता—चुप रह सुनयना, तू नहीं जानती कि विवाह के पूर्व हमारे देश में कोई भी कन्या भावी प्राण-प्रिय की किसी कल्पना को अपने मन में स्थान नहीं देती।

सुनयना—और यदि कभी स्थान देती भी है तो उसकी वह कामना कोरी कल्पना

नहीं रहती, एक दिन पूरी हो ही जाती है।

संयोगिता– *(एक निःश्वास के साथ)* कौन जाने–हो जाती है या नहीं सुनयना। भावी सम्भावनाओं का मुँह कौन देख पाया है! अकल्पित भविष्य भला किसको अपना संकेत देता है? वर्तमान के मन में बसे हुए राजा सदा-सर्वदा तो भविष्य के जीवनाधार बनते नहीं। *(निःश्वास लेकर)* जीवन कितना निर्मम होता है, तू नहीं जानती सुनयना, नहीं जानती।

सुनयना–ठहरें, ठहरें, राजनन्दिनी, कचनार का यह पुष्प-गुच्छ बड़ा धृष्ट है।

संयोगिता–क्यों, क्या हुआ?

सुनयना–दोनों उमापतियों के मध्य सन्धिमार्ग पर स्थिर होकर वहीं चुपके से छिप रहना चाहता है?

संयोगिता–पुष्प-गुच्छ नहीं सुनयना, तू ही धृष्ट हो गई है। उन सुमनों पर लांछन लगाते हुए तुझे संकोच नहीं होता, जो शृंगार के बहाने सूची-भेदन से अपना कण्ठ ही छिदवा डालते हैं। संसार के ये मूक प्राणी जगत् की जड़ता का कितना दारुण अत्याचार सहते रहते हैं, उपभोग और शृंगार के नाम पर सदा उनकी बलि चढ़ती रहती है, पर वे बेचारे सदा चुप-के-चुप बने रहते हैं–कुछ नहीं कहते–कभी कुछ नहीं कहते सुनयना।

सुनयना–राजकुमारी फूलों का गान ही नहीं सुनतीं, उनके प्राणों का क्रन्दन भी सुनती हैं। उनका हास ही नहीं देखतीं उनके सहर्ष बलिदान का मान भी करती हैं।

[सखी वीणा का प्रवेश]

वीणा–राजकुमारी, राजकुमारी, कहो बताऊँ, कहो न बताऊँ।

संयोगिता–चल, चल चुहियाखानी! आती तो है बतलाने के लिए और पूछती है–बताऊँ कि न बताऊँ! अरी बावरी, अगर नहीं ही बतलाना है तो फिर यहाँ आने की आवश्यकता ही क्या थी!

वीणा–आने की आवश्यकता! अच्छा सुनो, संयोग की रानी! सुनो, ध्यान देकर सुनो, कान लगाकर सुनो, चुपके-चुपके सुनो, छिपते-छिपते सुनो।

(तर्जनी से कर्ण, मुख, भाल, कण्ठ, वक्ष की ओर संकेत करती हुई) यहाँ सुनो, वहाँ सुनो, यहाँ न सही वहाँ सुनो। वहाँ सुनो, वहाँ सुनो—सुनो, सुनो, सुनो। एक बार नहीं, दो बार नहीं, दस बार नहीं सौ बार सुनो, हज़ार बार सुनो। सुनती ही रहो। पल-छिन घड़ियाँ बीतती जायँ, सलोनी सारी रतियाँ बीतती जायँ।

सुनयना—देख वीणा, बहुत हो चुका। मैं यह सब हास-परिहास कुछ नहीं सुनना चाहती। *(आश्चर्य से)* अरे... रात में मधुप! देख, देख वह मधुप आया, मधुप। मगर.... *(रुककर पहले कुछ सोचती हुई-सी, फिर आश्चर्य से)* मगर रात में मधुप का क्या कार्य?

संयोगिता—क्यों? रात में मधुप क्या इतने शीघ्र सो जाते हैं?

वीणा—*(हँसती हुई)* वह मधुप कैसा, जो रात में इतनी शीघ्र सो जाय! जब रजनीगंधा फूलती है और कुमुदिनी गाती, बेला नाचता और चम्पा उसका कान पकड़कर ऐंठती है तब साँवरिया मधुप को कहीं नींद आ सकती है भला?

संयोगिता—सुनयना! तू जा। यह मधुप-गुञ्जन कैसा है, इसकी शब्दावली का अर्थ क्या है, तू नहीं जानती, तू कुछ नहीं जानती। जान पड़ता है—वीणा यह जानती है। मैं उसकी ज्ञान-परीक्षा लेना चाहती हूँ। किन्तु तेरे आगे नहीं, तू जा!

[सुनयना का प्रस्थान]

वीणा—सचमुच राजकुमारी, यह मधुप जिस प्रकार का गुञ्जन रात में करते हैं उस प्रकार का दिन में नहीं करते। *(सिर हिलाती हुई मुस्कराती है)*

संयोगिता—*(आश्चर्य से)* अच्छा, *(मुस्कराती हुई)* समझी, तुझे मधुपों से वार्तालाप करने का अवसर बहुत मिला करता है।....ले, गया, वह गया, चला गया।

वीणा—चला गया तो चला जाय। उसकी चिन्ता क्यों है राजकुमारी?

संयोगिता—*(संकुचित होकर)* मुझे इन मधुपों से बड़ा डर लगता है वीणे! जब कभी मैं सुनती हूँ कि अमुक व्यक्ति लम्पट हो गया है और उसकी घर

की रानी दारुण दु:खों की कहानी बन गई है तब मैं यही सोचती रह जाती हूँ कि हाय, इस मानव-जाति को क्या हो गया है। वह कीड़ा बन गई है। फूल-पत्तियों का नहीं, नाली का कीड़ा...जो भी हो!...हाँ, तू कहने क्या आई थी, बता तो सही।

वीणा—राजकुमारी! *(नाक-भौं सिकोड़कर)* बात कोई साधारण तो नहीं जो मैं यों ही बता दूं—कोई पुरस्कार पाए बिना।

संयोगिता—पुरस्कार, पुरस्कार, जब देखो तब पुरस्कार। पुरस्कार की भूख अभी गई नहीं! *(मुस्कराती हुई)* मधुपों की भाषा समझने वाली बिना पुरस्कार पाये ही ऐसी तन्वंगी बन गई!

वीणा—*(मधुर हास के साथ)* राजकुमारि, मैंने अभी-अभी महारानी से सुना है कि महाराज एक-दो यज्ञ करेंगे।

संयोगिता—*(आश्चर्य में पड़कर)* एक साथ दो यज्ञ?

वीणा—हाँ राजकुमारी। पहले यज्ञ का नाम है राजसूय और *(मुस्कराते हुए)* अब दूसरे यज्ञ का नाम मैं यों ही नहीं बताऊँगी!

संयोगिता—तो जा, अपना यह कृष्ण मुख यहाँ से ले जा।

वीणा—*(मुँह लटकाती हुई)* रूठ गईं! इतनी जल्दी रूठ गईं!

संयोगिता—*(मुस्कराती हुई)* तो बतलाती क्यों नहीं?

वीणा—दूसरे यज्ञ का नाम होगा—राजकुमारी! संयोगिता-स्वयंवर।

[संयोगिता अकस्मात् विचारमग्न हो जाती है]

वीणा—अरे! राजकुमारी गम्भीर कैसे हो गईं? पुरस्कार देने में सोच-विचार होने लगा!

संयोगिता—*(एक नि:श्वास लेती हुई)* ले मेरी वीणा! *(हार उतारती हुई)* अगर स्वयंवर सकुशल सम्पन्न हो गया तो मैं तुझे ऐसा पुरस्कार दूंगी जिसे तू और तेरी सन्तान कभी न भूलेगी।

वीणा—*(हार वापस करती हुई)* संयोग दीदी, मैं तो यों ही कह रही थी। इस हार का सत्कार-निर्वाह भला वीणा कर सकती है! नहीं-नहीं, मैं इस समय

कुछ न लूँगी। अब इन आँखों के ये आँसू दुविधा और आशंका के न रहकर अतुल आनन्द के होंगे तब, बस तभी लूंगी।

[संयोगिता अलमारी खोलकर पृथ्वीराज का एक चित्र निकालती है और उसे अपने वक्ष से लगाकर आँखें मूँद लेती है। धीरे-धीरे आँखों से आँसू गिरने लगते हैं—वीणा पार्श्व में खड़ी होकर गा उठती है]

आज पिया के भरे नयन हैं।

जब सपनों की सारी निधियाँ
पिया-मिलन के द्वार आ रहीं।
यमुना तट की वंशी-ध्वनियाँ
सुर-सरि के इस पार आ रहीं

तब पूजन की इस बेला में
कमल-नयन पर आँसू-कन हैं
आज पिया के भरे नयन हैं।

[संयोगिता रूमाल से आँसू पोंछती वीणा को कण्ठ से लगा लेती है और यवनिका गिरती है]

षष्ठ दृश्य

स्थान–पृथ्वीराज का जन-सम्पर्क-कक्ष ।

समय–सायंकाल लगभग आठ बजे ।

[दृश्य–पूर्ववत्]

पृथ्वीराज– *(टहलते हुए)* सदा हमारी जय होती रहे, यह निश्चित नहीं । और वास्तव में तो कुछ भी निश्चित नहीं है चन्द, सब अनिश्चित है । हम खट्टू बन में गड़ी हुई धनराशि लेने के लिए यद्यपि सतर्क हो गये थे, हमको इस बात की आशंका भी न थी कि वहाँ पहुँचते ही मुहम्मद ग़ौरी के अतिरिक्त गुजरात का राजा भोला भीम भी हमारे ऊपर आक्रमण कर देगा । चन्द, मेरी समझ में नहीं आता कि विधाता का कैसा विचित्र विधान है ।

चन्द–विधाता का कोई विधान ऐसा नहीं है जिसमें मानवी दुर्बलता का हाथ न हो। इस घटना में अवश्य ही महाराज की शासन-व्यवस्था का ही कोई गुप्त दोष है ।

पृथ्वीराज– *(रोष के साथ)* क्या कहा ? शासन-व्यवस्था का गुप्त दोष !

चन्द–हाँ महाराज ! शासन-व्यवस्था का । *(गद्दी पर हाथ पटककर)* मैं इस बात को दावे के साथ कह सकता हूँ कि न केवल ग़ज़नी के सुलतान ग़ौरी के पास, बल्कि गुजरात के राजा भोला भीम के पास खट्टू बन में जाने की सूचना दिल्ली से गई थी, दिल्ली से ।

पृथ्वीराज– *(रोष के साथ)* हूँ ! दिल्ली से गई थी ! प्रतिहारी !

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी– *(हाथ जोड़कर, विनत भाव से)* आज्ञा महाराज !

पृथ्वीराज–देखो, महामात्य क्या कर रहे हैं ? अगर पूजन कर चुके हों, तो कहना–चन्द कविराज आपको स्मरण कर रहे हैं । *(कथन के साथ मुस्कराते हैं)*

प्रतिहारी–जो आज्ञा महाराज। *(प्रस्थान)*

चन्द–महाराज की यह दब्बू-नीति भी एक दुर्बलता है। श्रीमान् ने यह क्यों नहीं कहा कि वह स्वयं बुला रहे हैं।

पृथ्वीराज– *(मुस्कराते हुए)* दुर्बल मैं हूँ, दब्बू मैं हूँ। यही बात आपको महामात्य के सामने कहनी पड़ेगी। तभी आपको विदित हो जायेगा कि कौन कितने गहरे पानी में है। राजप्रासादों को गगनचुम्बी बनाने में महीनों लग जाते हैं पर विध्वंस होने में कितनी देर लगती है! *(तीव्रता से साथ)* यदि शासन-व्यवस्था में कोई ऐसा असह्य दोष है तो राजसभा में महामात्य पर अविश्वास का प्रस्ताव क्यों नहीं ले आते कविराज!

चन्द–राजसभा! राजसभा! देख लिया मैंने राजसभा का नाटक! रात में महाराज घोषणा करते हैं कि व्यक्तिगत सहानुभूति रखने पर भी ग़ज़नी के राजकुमार हुसेनख़ाँ को अपने राज्य में स्थान नहीं दे सकता और दूसरे दिन महाराज सोमेश्वर का आदेश होता है कि ग़ज़नी के राजकुमार को शरण देना मुझे स्वीकार है। यही है न राजसभा का नाटकीणय स्वरूप!

पृथ्वीराज–रग पर नश्तर मारने की चेष्टा मत करो चन्द! अभी तक मानस पर उस वेदना का प्रभाव ज्यों-को-त्यों बना हुआ है। अभी तक चित्ररेखा की वह मर्म-वाणी कानों में गूँज रही है–हाथ स्नेह का हो या ममता का, प्रेम का हो या अभिन्न मित्रता का, जब कण्ठ से लगा लेने के लिए उठता है तब यह भेद कहाँ रह जाता है कि वह व्यक्ति का है, समाज का है या राज्य का।

चन्द– *(मुस्कराते हुए)* यह महाराज की दूसरी दुर्बलता है। कभी-कभी मेरे मन में आता है कि महाराज को तो सम्राट् न होकर कवि होना चाहिए था।

पृथ्वीराज– *(एक निःश्वास के साथ)* हाँ, कविराज ऐसा कह सकते हैं। उनमें इतनी क्षमता है कि ऐसा कह सकें।

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी–घणी क्षमा महाराज।

पृथ्वीराज–कहो प्रतिहारी, क्या बात है?

प्रतिहारी–दण्डनायक महाराज से मिलने आये हैं।

पृथ्वीराज–आने दो।

[प्रतिहारी का प्रस्थान, उसके अनन्तर दण्डनायक का प्रवेश]

दण्डनायक–*(विनत होकर)* महाराज की जय हो।

पृथ्वीराज–आओ दण्डनायक! कहो, क्या समाचार है?

दण्डनायक–महाराज, सुलतान ने भोजन अस्वीकार कर दिया है।

पृथ्वीराज–*(आश्चर्य के साथ)* भोजन अस्वीकार कर दिया है; अभिप्राय?

दण्डनायक–उनका कहना है कि जब तक महाराज से मिलना न होगा तब तक मैं खाना-वाना कुछ न खाऊँगा।

पृथ्वीराज–*(मुस्कराते हुए)* अब कहो कविराज, जो कुछ कहना चाहते हो, कह डालो। ग़ज़नी के सुलतान को भूखा मार डालना चाहते हो तो मार डालो, मैं कुछ न कहूंगा। पृथ्वीराज दुर्बल है। पृथ्वीराज की वृत्तियाँ सुकुमार हैं! वह कठोर बन ही नहीं सकता! जाओ दण्डनायक, ग़ज़नी के सुलतान से कह दो, पृथ्वीराज उसका मुख देखना नहीं चाहता।

दण्डनायक–*(विनत होकर)* जो आज्ञा महाराज।

[दण्डनायक जाने लगता है, इतने में पृथ्वीराज बोल उठते हैं]

पृथ्वीराज–*(उच्च स्वर से)* ठहरो! मैंने महामात्य को बुलाया है, उन्हें आ जाने दो।

चन्द–*(गम्भीरता से)* महाराज! अभी मैंने जो कुछ कहा, केवल प्रसंगवश कहा। और सच्ची बात तो यह है कि मनोविनोद में कहा। मेरा यह आशय कदापि नहीं है कि महाराज शत्रु के साथ भी कोई अन्याय करें। जब होनहार कोई टाल नहीं सकता, जब जीवन के सुख-दुःख केवल कर्म के भोग हैं, जब यह निश्चित है कि न कोई मरता है और न कोई मारता है, तब मेरे कहने से या किसी के कहने से महाराज अपनी अन्तरात्मा की पुकार की अवहेलना करें, यह मैं कभी न चाहूंगा। हाँ, मैं इस अवसर पर महाराज को एक बात का स्मरण दिलाना चाहता हूँ।

पृथ्वीराज–किस बात का ?

चन्द–इस बात का कि यही व्यक्ति है जिसने पिछली बार अजमेर के कारागार में अपने मानवतावादी होने की डींग हाँकी थी। क्या मानवता की यही परिभाषा है कि शब्दजाल में फाँसकर आप-जैसे सहृदय महामानव की उदारता से अनुचित लाभ उठाया जाय ? और फिर अवसर आने पर चुपचाप खट्टू बन में गुजरात-नरेश भोला भीम को साथ लेकर आक्रमण कर दिया जाय।

[महामात्य का प्रवेश]

कैमास– *(चन्द की ओर देखकर मुस्कराते हुए)* महाराज, मैं अभी ग़ज़नी के सुलतान से ही मिलकर आ रहा हूँ।

चन्द–कुछ कह रहा था ?

कैमास–कह तो कुछ नहीं रहा था। नमाज़ पढ़ता हुआ आँसू गिरा रहा था।

पृथ्वीराज– *(एकाएक आश्चर्य से)* आँसू गिरा रहा था ! और नमाज़ पढ़ते हुए !!

कैमास–हाँ महाराज, मगर इसमें चिन्ता की क्या बात है ? नरक के कीड़े जब पैरों से कुचले जाते हैं तब मुझे खुशी होती है। अपने वचन से टल जाने वाला आदमी जब अपनी करनी पर पछताता है, तब मुझे प्रसन्नता होती है। मैं ग़ज़नी के सुलतान के साथ किसी प्रकार का शिष्टाचार दिखलाने के पक्ष में नहीं हूं।

पृथ्वीराज– *(म्लान मुख से)* जाओ दण्डनायक, उस ग़ौरी के बच्चे से कह दो कि पृथ्वीराज से किसी प्रकार के शिष्टाचार की आशा न करे।

दण्डनायक–जो आज्ञा महाराज।

[दण्डनायक का प्रस्थान]

पृथ्वीराज–महामात्य को मैंने इसलिए स्मरण किया था कि हमारी गतिविधियों का गुप्त भेद ग़ज़नी के सुलतान और गुजरात के नरेश को कैसे मिलता है। आपने इस विषय में कुछ विचार किया ?

कैमास—महाराज ! कल ही हम खट्टू बन से लौटे हैं। रात को भी पूरा विश्राम करने का अवसर नहीं मिला। यह विजय कोई साधारण विजय नहीं थी। सामन्त लक्ष्मणराव की स्थिति तो अब चिन्ताजनक है।

पृथ्वीराज—सामन्त लक्ष्मणराव की स्थिति चिन्ताजनक है तो मैं उनसे मिलना चाहूँगा। पर महामात्य इस बात को जानते हैं कि मैं उस देशद्रोही का कटा सिर शीघ्र ही देखना चाहता हूँ जिसने हमारे गुप्त भेद शत्रु के पास पहुँचाये हैं।

कैमास—ऐसा ही होगा महाराज ! इस बारे में हम उसके साथ समुचित व्यवहार करेंगे।

चन्द—*(कैमास से)* महामात्य क्षमा करें तो मैं एक प्रश्न करूँ ?

कैमास—सहर्ष—सहर्ष कविराज।

चन्द—कारागार में सुलतान के साथ कोई बात नहीं हुई ?

कैमास—मैंने जब देखा कि वह नमाज़ पढ़ता-पढ़ता आँसू टपका रहा है, तब मैंने उससे कोई प्रश्न करने की आवश्यकता नहीं सनझी।

चन्द—*(फीकी हँसी हँसते हुए)* महामात्य ! मुझे आपके इस उत्तर पर आश्चर्य हो रहा है। नमाज़ समाप्त हो जाने के बाद और कुछ न सही, खाना खाने का अनुरोध तो श्रीमान् उससे कर ही सकते थे।

पृथ्वीराज—नहीं चन्द ! महामात्य ठीक मार्ग पर हैं। शत्रु के साथ सद्व्यवहार करना उचित नहीं।

कैमास—महाराज ! शासन-व्यवस्था में सद्व्यवहार का कोई महत्व नहीं—न शत्रु के साथ, न मित्र के साथ।

पृथ्वीराज—अच्छी बात है महामात्य ! शत्रुओं को भेद देने वाले का यदि पता न चला तो इसका कारण महामात्य होंगे। मुझे यह सुनना स्वीकार नहीं है कि पता नहीं लगा। क्योंकि मैं जानता हूँ, बहुतेरी बातें केवल इसलिए पूरी नहीं होतीं कि हम शिष्टाचारवश कर्तव्य-पालन से डरते रहते हैं।

कैमास—महाराज कम-से-कम मेरे साथ तो अन्याय न करें।

पृथ्वीराज–तो महामात्य क्षमा करें, ग़ज़नी के सुलतान ने नमाज़ पढ़ते समय जो आँसू गिराये, उनके साथ भी न्याय होना चाहिए। महामात्य विश्वास करें चाहे न करें, पर मुझे कल रात-भर नींद नहीं आई और न अब आ सकेगी। कोई हमारे साथ कैसा व्यवहार करता है इस बात का हमारी नीति और हमारे व्यवहार के साथ क्या सम्बन्ध है ? क्या मनुष्य के सारे व्यवहार इतने सम्बन्धित और आश्रित होने चाहिएँ कि सारा जीवन एक व्यापार बन जाय ? सुलतान को चाहे महामात्य आजीवन बन्दीगृह में डाल रक्खें, पर ऐसा तो नहीं होना चाहिए कि हम उसकी कोई बात ही न सुनें।

कैमास–शत्रु के साथ महाराज के वार्तालाप का परिणाम हम एक बार भोग चुके हैं।

पृथ्वीराज–उस परिणाम का मूलाधार, हमारे देश में फैली हुई अनैतिकता है महामात्य ! जब मनुष्य के भीतर अदम्य तृष्णा जागरित हो जाती है तो उसके शील, सौजन्य और कर्तव्य का संतुलन भी नष्ट हो जाता है। अगर हमारे देशवासी ही हमारे साथ विश्वासघात करते रहें, तो हमारा भविष्य कभी उज्ज्वल नहीं रह सकता। एक-न-एक दिन विस्फोट होकर ही रहेगा।

चन्द–यहाँ मैं महाराज से पूर्णरूप से सहमत हूँ।

कैमास–महाराज ! राजकाज में अटूट धैर्य की आवश्यकता होती है। छोटी-छोटी बातों में पड़कर तुरन्त व्यग्र हो उठना हमारी दृढ़ता के लिए सहायक नहीं, घातक है। महाराज से हम सदा सन्तुलन की आशा करते हैं।

[दण्डनायक का प्रवेश]

दण्डनायक– *(विनत होकर)* महाराज की जय हो।

पृथ्वीराज–कहो दण्डनायक, और कोई नई बात है ?

दण्डनायक–महाराज, सुलतान ने सन्धि का प्रस्ताव किया है और कहा है कि महाराज चाहे जितना दण्ड दे लें, पर व्यवहार राजबन्दी-जैसा ही करें।

पृथ्वीराज–और कुछ बातचीत हुई दण्डनायक ?

दण्डनायक–हुई थी महाराज। उसका कहना है कि महाराज अपना घर नहीं

देखते और दोषी मुझे समझते हैं। अगर गुजरात के राजा भोला भीम ने मुझे न उकसाया होता, तो यह दिन मुझे कदापि न देखना पड़ता।

पृथ्वीराज–सुन रहे हो कविराज ? ग़ज़नी के सुलतान का यह उत्तर हमारे देश की वर्तमान अवस्था के मुख पर एक ज़बरदस्त तमाचा है।

चन्द–*(एक निःश्वास के साथ-)* महाराज ठीक कहते हैं। अगर हम अपने घर की फूट दूर न कर सके तो हमारे लिए शान्ति और सुख से सोना सदियों तक दुष्कर ही नहीं, असम्भव हो जायगा, असम्भव !

कैमास–महाराज ! मेरे पास इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है। मैं पड़ोसी राज्यों से मित्रता के लिए सदा तत्पर हूँ, पर ईर्ष्या-द्वेष उनके हृदय से कैसे दूर कर सकता हूँ !

पृथ्वीराज–*(गरजते हुए)* तब सुलतान के साथ राजबन्दी का-सा व्यवहार करें महामात्य, श्वान का-सा नहीं। जाओ दण्डनायक ! सुरक्षा के साथ सुलतान को राजभवन की अतिथिशाला में ठहराने की व्यवस्था कर दो।

कैमास–महाराज का आदेश मैं स्वीकार करता हूँ पर साथ ही यह भी चाहता हूँ कि कम-से-कम पन्द्रह दिन तक किसी को उससे मिलने का अवसर न दिया जाय।

पृथ्वीराज–पन्द्रह दिन ही क्यों महामात्य, पूरा एक मास।

कैमास–*(मुस्कराते हुए)* वाह ! महाराज से हम सदैव ऐसे ही समन्वय की आशा करते हैं।

[यवनिका गिरती है]

सप्तम दृश्य

स्थान–दिल्ली नगर।

समय–प्रातः काल।

[एक दुमंजिला मकान, जिसके नीचे कई किरायेदार रहते हैं। ऊपर एक बैठकनुमा कमरा, जिसका ज़ीना दरवाजे से लगा हुआ है। द्वार पर एक चिक। अन्दर उत्तर-दक्षिण से खुली हुई खिड़कियाँ। एक अलमारी, जिसके दो ख़ानों में किताबें भरी हुई हैं। सबसे ऊपर के ख़ाने में कुछ बस्ते रखे हैं। अलमारी के पास में एक ढालु सन्दूकची जिस पर काग़ज़, क़लम और पीतल की दवात रक्खी है। सन्दूकची के नीचे एक बालू-दानी। द्वार के पास शीतल-पाटी बिछी है, जिसके ऊपर माधवभट्ट और धर्मायण बैठे हुए वार्तालाप कर रहे हैं। धर्मायण के पास एक हुक्का रखा है, जिसकी सटक पर ख़स बुना हुआ है। बात करते-करते धर्मायण जब कभी हुक्का पीने लगता है, तो धुआँ कभी मुंह की दाईं चीरन से निकलता है, कभी बाईं चीरन से। माधवभट्ट के सिर पर लाल पगड़ी है, जिस पर जरदोजी का अलंकरण है। ज्योंही धर्मायण सटक माधवभट्ट की ओर बढ़ाता है, त्योंही यवनिका उठती है]

माधवभट्ट– *(हँसता हुआ)* अच्छा धर्मायण, अब तुम एक बात बताओ कि संसार में आजकल राजसत्ता दुष्टों के हाथ में अधिक है या सज्जनों के हाथ में।

धर्मायण– *(एकाएक प्रश्न सुनकर कुछ सोचता हुआ)* गुरुजी ! मुझे ऐसा जान पड़ता है कि सत्ताधारी सज्जनों की संख्या कम है, दुर्जनों की अधिक।

माधवभट्ट–महाराज पृथ्वीराज की राजसभा में विश्वासपात्र, निःस्वार्थ और वीर सभासदों की संख्या अधिक है अथवा अहंवादी, अवसरवादी लोगों की ? तात्पर्य यह है कि सच्चे राजभक्त अधिक हैं अथवा चलते-पुर्ज़े दुनियादार।

धर्मायण–गुरुजी ! काँटे पर तोलकर तो नहीं देखा पर अनुमान यह है कि महाराज की राजसभा में ही क्या, सर्वत्र चलते-पुर्ज़े ही सत्ताधारी होते हैं।

माधवभट्ट– *(हँसकर)* तब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं धर्मायण, कि संसार में दुर्जनों की संख्या अधिक है।

धर्मायण–हाँ गुरुजी! सच्ची बात तो यही है।

माधवभट्ट–महाराज पृथ्वीराज की राजसभा में भी दुर्जनों की ही तूती बोलती होगी। शासन-व्यवस्था पर उन्हीं का विशेष प्रभाव रहता होगा।

धर्मायण– *(मुस्कराते हुए)* ऐसा नहीं है गुरुजी! महाराज दुर्जनों के कट्टर शत्रु हैं। उनका व्यक्तित्व महान् है। इसलिए क्या सभासद् और क्या सामन्त, सब लोग उनके प्रभाव से एक सूत्र में गुंथे रहते हैं। दुर्जनों की चलने नहीं पाती।

माधवभट्ट–तुम कुछ भी कहो धर्मायण! अब वीरों का युग समाप्त होता है। धीरे-धीरे सारा संसार उन तानाशाहों के संकेत पर निर्भर होगा, जो वीर और हठी न होकर बौद्धिक और कूटनीतिज्ञ होंगे। तुम समझते हो कि दिल्ली का सिंहासन तोमरों के हाथ से चौहानों के हाथ में जाकर युग-युग तक स्थिर एवं उन्नतिशील बना रहेगा?

धर्मायण– *(हँसता हुआ)* इसमें भी कोई सन्देह है?

माधवभट्ट–तुम बड़े भोले हो धर्मायण! तुमको इतना भी ज्ञान नहीं कि हमारे सुलतान शहाबुद्दीन की क्या योजना है?

धर्मायण– *(आश्चर्य में पड़कर)* अच्छा, सुलतान की भी कोई योजना है इस सम्बन्ध में?

माधवभट्ट– *(मुस्कराते हुए)* उसी योजना को लेकर मैं तुम्हारे पास आया हूँ। *(धर्मायण के कान के पास मुँह ले जाकर फुसफुसाते हुए)* जितना वेतन तुम यहाँ पाते हो, उसका दूना तुमको वहाँ से मिलेगा और समय-समय पर जो विशेष पुरस्कार मिलेंगे सो अलग। सम्राट् पृथ्वीराज से मुझको सब मिलाकर एक लाख की सम्पत्ति मिली है। मुझे आशा है सुलतान से भी इतनी रक़म तो पा ही जाऊँगा। इस तरह मेरे दोनों हाथों में लड्डू आ जायेंगे!

धर्मायण– *(आश्चर्य से)* दोनों हाथों में! अच्छा! मगर ऐसा तुमको करना

तो नहीं चाहिए।

माधवभट्ट—तुम कुछ नहीं समझते धर्मायण! यह बहती गंगा है—बहती गंगा। यदि अब भी इसमें हाथ न धो पाये, तो फिर कभी भी न धो पाओगे। ग़ज़नी पहुँचते ही वह शानदार महल बनवाऊँगा कि सात पुरखे तर जायेंगे और भावी सन्तानें हमारे नाम पर आरती उतारेंगी सो अलग। मनुष्य का जीवन पाकर जिसने लक्ष्मी का नशा न किया, वह भी कोई मनुष्य है?

धर्मायण—वाह गुरुजी वाह! क्या बात कही है! बस, आज मुझको भी दीक्षा दे दीजिए।

माधवभट्ट—*(हँसता-हँसता)* अच्छी बात है, अच्छी बात है। और कहो धर्मायण! तुम्हारे सामन्तों में सुनते हैं, कई बड़े वीर हैं। यहाँ तक कि सिर धड़ से अलग हो जाने पर भी उनके रुण्ड ही तलवार चलाते रहते हैं।

धर्मायण—वीरता की बात न पूछो। काका कान्ह तो इतना भी नहीं सहन कर सकते कि कोई उनके सामने मूँछों पर ताव दे जाय। एक बार कहीं प्रतापसिंह राजसभा में ऐसी भूल कर बैठे। परिणाम यह हुआ कि काका जी ने तलवार के एक ही वार से ऐसा जनेऊ-उतार हाथ मारा कि उनके धड़ के दो टुकड़े हो गये। सभा-भवन में उनका रक्त बह गया। महाराज को इस घटना पर बहुत दुःख हुआ। उन्होंने सगे काका होने पर भी उन्हें क्षमा नहीं किया। तब से इक्कीस टंक हीरे से जड़ी हुई सोने की पट्टी उनकी आँखों पर चढ़ी रहती है। वह या तो शयन-शय्या पर खुलती है या युद्ध-क्षेत्र में।

माधवभट्ट—अच्छा, तो ऐसा करो कि यहाँ के सारे समाचार वहाँ नित्य भेजते रहो। दो-चार साँडनी रख लो, और उनके लिए एक सवार! पर यह सब मामला गुप्त रहना चाहिए, जिससे कानोंकान किसी को कुछ भी ख़बर न लगे, कभी कोई सन्देह न करे। ख़र्चा जो कुछ होगा, सुलतान देंगे। ज़रूरत हो तो मैं पाँच सहस्र मोहरें देता जाऊँ!

धर्मायण—*(पुनः पैर पकड़ लेता है)* जो आज्ञा गुरुदेव! मुझको तो अपना दास समझ लीजिए आज से। *(पैर दबाने लगता है)*

माधवभट्ट—एक बात और जान लो धर्मायण! हम दोनों व्यक्ति जो यह योजना

बना रहे हैं इसके मूल में है—हमारी देशभक्ति। हमें ग़ज़नी के सुलतान के प्रति भक्ति रखनी ही पड़ेगी। इसलिए इतना समझ लो कि इस कार्य को हाथ में लेना तलवार की धार पर चलना है। कभी किसी प्रकार यदि भेद प्रकट हो गया तो रौरव नरक का द्वार दूर नहीं है। जिस तरह अज का वध किया जाता है, वैसे ही हमारा भी किया जायेगा।

धर्मायण—बस-बस गुरुदेव, इतना बहुत है। आपकी इस योजना का मैं अक्षरश: निर्वाह करूँगा।

माधवभट्ट— *(सामने रखी थैली से सोने के सिक्के उँडेलते हुए)* और कोई विशेष बात हो तो बतलाओ। मैंने दिल्ली का बड़ा नाम सुना था। मैंने सुना था कि दिल्ली इन्द्रपुरी है, जहाँ राजसभा तक में अप्सराएँ राग-रंग और नृत्य-गायन में निरत रहा करती हैं।

धर्मायण— *(मुस्कराकर मोहरें गिनता हुआ)* हाँ, यहाँ कर्नाटकी नामा एक नर्तकी है। आज तो नहीं पर कल पूर्णिमा के दिन उसके नृत्य का कार्यक्रम है।

माधवभट्ट—तो क्या महाराज भी कुछ अनुराग रखते हैं?

धर्मायण—महाराज तो नहीं, पर इधर महामात्य कैमास अवश्य अनुरक्त जान पड़ते हैं।

माधवभट्ट—तब ठीक है! हमारे सुलतान को अपने उद्देश्य में एक-न-एक दिन सफलता अवश्य मिलेगी, मिलकर रहेगी। गाँठ बाँध लो धर्मायण, मेरी इस बात को, और खोलना तब जब यह पूरी हो जाय! समझे!

[यवनिका गिरती है]

अष्टम दृश्य

स्थान–राजभवन का एक कक्ष।

समय–सायंकाल लगभग आठ बजे।

[महामात्य कैमास एक गद्देदार आसन पर विराजमान हैं। उनके निकट एक पुष्पहार रखा है। इस समय वे तनजेब का कुर्ता और चूड़ीदार पायजामा पहने हुए हैं। कन्धों और सामने के बटनों के दोनों ओर जालीदार जरदोजी की सजावट है। उनके दाएं हाथ में जो मुद्रिकाएँ हैं, उनमें पन्ना और पुखराज के नग जड़े हैं। कुर्ते पर केवड़े के इत्र का सौरभ है और उनके कान में भी उसका एक फाहा खुंसा है। वह एक मनुष्याकार दर्पण के सामने जा खड़े होते हैं। उनकी अँगुलियाँ केशों पर हैं। कदाचित् वह यह देख रहे हैं कि कोई श्वेत केश अब शेष तो नहीं है। इतने में यवनिका उठती है]

कैमास– *(आवेश में)* यह कभी अपने वचन का पालन नहीं करती। समय पर कभी नहीं आती। खैर, कोई बात नहीं। *(उठता है, खिड़की से नीचे झाँककर, फिर प्रसन्न होता है। दर्पण के सम्मुख जाता है और पुष्पहार को उठाकर द्वार के निकट किवाड़ की ओट में छिप जाता है)*

[राजनर्तकी कर्नाटकी का प्रवेश]

कर्नाटकी– *(आश्चर्य से)* अरे! यहाँ तो कोई नहीं। *(लौटती है, किन्तु तुरन्त कैमास प्रकट होकर सामने आ जाता है)*

कैमास– *(हाथ पकड़कर)* आओ-आओ, भागो नहीं राजनर्तकी कर्नाटकी! तुम नहीं जानतीं कि मैं कितनी देर से तुम्हारी प्रतीक्षा में सन्तप्त हो रहा हूँ।

कर्नाटकी–मैं आ तो गई महामात्य, परन्तु मैं अपने को बड़े संकट में पा रही हूँ। *(धीमे स्वर में)* क्या यह उचित है कि मैं महाराज को धोखा दूं?

कैमास–परन्तु.... परन्तु इसमें धोखे की क्या बात है? राजनर्तकी किसी एक की सम्पत्ति नहीं। तुम केवल नर्तकी हो, विवाहिता दासी नहीं।

कर्नाटकी–फिर भी ऐसा नहीं है महामात्य कि मैं सर्वथा स्वतन्त्र हूँ। मुझे महाराज के प्रति विश्वसनीय रहना ही पड़ता है।

कैमास– *(हाथ पकड़कर सिंहासन की ओर खींचता हुआ)* अच्छा, इधर आओ, बैठो-बैठो। देखो, यह फूलों का हार तुम्हारे लिए मैंने विशेष रूप से मँगवाया है। देखो, तुम्हारी सुकुमारता से इसकी कितनी समानता है।

कर्नाटकी– *(हिचकती-हिचकती आसन पर बैठती हुई)* महाराज है तो मेरे ऊपर बड़ी कृपा आपकी, किन्तु....

कैमास– 'किन्तु', 'परन्तु' कुछ मत सोचो। देखो कर्नाटकी, तुमको शायद मालूम नहीं कि दुनिया में सबसे बड़ी चीज़ है पैसा अर्थात् धन; सम्पत्ति और ऐश्वर्य।

कर्नाटकी– *(हँसती है)* महाराज! मुझे यह सब....क्यों समझा रहे हैं? क्या मैं इतना भी नहीं समझती? फिर मेरे सामने सम्पत्ति का ऐसा कोई प्रश्न भी नहीं है। महाराज की कृपा से सब कुछ सुलभ है।

कैमास– *(निःश्वास लेकर)* अच्छा कर्नाटकी, मुझे एक बात बता दो, सच-सच बता दो, मैं बुरा न मानूंगा।

कर्नाटकी– *(संकुचित होकर)* महामात्य से मैंने कोई बात कभी छिपाई है क्या?

कैमास–अच्छा, पहले यह बताओ, क्या मैं महाराज से कम सुन्दर हूँ? *(द्वार पर कुट-कुट शब्द सुनकर)* अरे। *(आश्चर्य के साथ)* यह इस समय यहाँ कौन आ गया!

कर्नाटकी– *(जीभ को दाँतों के नीचे दबाकर)* अब, अब क्या होगा महामात्य?

कैमास–कुछ नहीं होगा कर्नाटकी, तुम चिन्ता न करो। हमारी बात सुनने के लिए इस समय कोई नहीं आ सकता।

कर्नाटकी– *(घबराकर)* ओः मैं समझ गई। मैं सब समझ गई महामात्य! मुझे जाने दीजिए, मुझे जाने दीजिए। हो सकता है कि....

कैमास– *(हाथ पकड़कर रोकते हुए)* नहीं, नहीं, तुम नहीं जा सकतीं कर्नाटकी। तुमको यहाँ ठहरना ही होगा।

कर्नाटकी– *(हाथ छुड़ाती हुई)* कम-से-कम इस समय तो जाने दीजिए महामात्य, फिर चली आऊँगी।

कैमास–अच्छा, बोलो किस समय ? वचन दो, वचन दो कर्नाटकी, कि तुम आओगी।

कर्नाटकी–महामात्य ! मैं कहीं जाऊँगी नहीं। महारानी इच्छारानी और पद्मावती दोनों को नृत्य-गान में उलझाये रखूंगी। उसके बाद फिर देखा जाएगा महामात्य। मैं... मैं... मैं... कुछ नहीं कह सकती। महामात्य नहीं जानते कि मैं बड़े संकट में हूँ।

कैमास– *(हाथ छोड़ते हुए)* अच्छा, जाओ। आना अवश्य। शेष बातें मैं तुमको फिर बताऊँगा।

[कर्नाटकी चली जाती है और यवनिका गिरती है]

नवम दृश्य

स्थान—पानीपत।

समय—रात्रि के लगभग बारह बजे।

[पानीपत में महाराज का विशेष भवन। महाराज पृथ्वीराज एक सुसज्जित पर्यंक पर पड़े सो रहे हैं। वाम पार्श्व में धनुषबाण और तलवार टँगे हुए हैं। मृगया-सम्बन्धी वस्त्र खूँटियों पर टँगे हैं। सामने एक ओर चौकी पड़ी है जिस पर एक व्याघ्रचर्म रखा है। उसकी एक आँख में छिद्र है, जिसमें रक्तचिन्ह अब तक विद्यमान है। पर्यंक के नीचे जो पदत्राण रखे हुए हैं, उनके नीचे हरी दूब के दो तिनके दिखलाई पड़ते हैं। पंचमुखी दीपपुञ्ज दाएँ पार्श्व में कुछ अन्तर के साथ दीप्तिमान हैं। दीवार पर सुन्दर लिपि में लिखा हुआ है—'आखेट एक क्रीड़ा है, जिसमें हमको मृत्यु से खेलते हुए निर्भय रहने की एक प्रेरणा मिलती है'।

एकाएक भीतर के खुले द्वार से जयपत्ती प्रवेश करती है और यवनिका उठती है।

व्याघ्रचर्म के पास जाकर जयपत्ती कुछ भयभीत होती है और कुछ देर रुककर अन्त में पलंग पर जाकर महाराज के पाँव दबाने लगती है]

पृथ्वीराज— *(आश्चर्य से)* अरे जयपत्ती, तू यहाँ कहाँ ?

जयपत्ती— *(पलंग से उतरकर)* महारानी ने भेजा है महाराज !

पृथ्वीराज—क्यों, महारानी ने क्यों भेजा है ? कुशल तो है ?

जयपत्ती—महाराज और तो सब ठीक है, किन्तु महामात्य...।

पृथ्वीराज—महामात्य का कोई सन्देश लेकर आई है ?

जयपत्ती—महाराज ! सन्देश नहीं ! *(हिचकते-हिचकते)* महारानी ने उनको राजनर्तकी कर्नाटकी के साथ...। *(मुख नीचा कर लेती है)*

पृथ्वीराज— *(आश्चर्य से)* अच्छा ! *(कुछ सोचते हुए)* जयपत्ती ! तूने इतनी रात को आकर बड़े साहस का कार्य किया। मगर तू बहुत थक गई होगी। विश्राम करेगी कि चलेगी ? वैसे तो मैं सोचता हूँ कि मुझे इसी

समय चल देना चाहिए।

जयपंत्ती—जैसी महाराज की इच्छा।

पृथ्वीराज—अच्छा, थोड़ी देर यहीं पार्श्व में विश्राम कर ले, पर कोई जानने न पाये कि तू इस समय यहाँ आई है। तब तक मैं तैयार हो जाता हूँ।

जयपत्ती—जो आज्ञा महाराज। *(प्रस्थान)*

[महाराज पलंग से नीचे उतर कर टहलते हैं। उनकी मुट्ठियाँ बँध जाती हैं और वह आवेश में आकर आप-से-आप बोल उठते हैं]

पृथ्वीराज—तुमने समझा होगा कैमास, पृथ्वीराज दयालु है, बड़ा सहृदय है। पर तुमने यह नहीं सोचा कि पृथ्वीराज राजप्रासाद में किसी प्रकार का अनाचार सहन नहीं कर सकता! तुमने अपनी पद-मर्यादा की हत्या की, मेरे विश्वास की हत्या की, दिल्ली-सम्राट् की सारी आशाओं को तुमने धूल में मिला दिया! *(नि:श्वास लेकर)* प्रजा जब सुनेगी, तब यही कहेगी न—जब महाराज ऐसी चरित्रहीनता के समर्थक हैं, तब उनसे क्या बचाव होगा!

[यवनिका गिरती है]

दशम दृश्य

स्थान—महाराज पृथ्वीराज का सभा-भवन।

समय—सायंकाल लगभग छः बजे।

[भवन सामन्तों, नगर के सम्भ्रान्त पुरुषों तथा नागरिकों से पूरी तरह भरा हुआ है। महाराज पृथ्वीराज का स्थान रिक्त है। महामात्य कैमास भी अनुपस्थित हैं। सामन्तगण परस्पर मन्द स्वर में बातें कर रहे हैं। कोई स्पष्ट न कहकर कान में कहता है। कोई बात करने के लिए आसन से उठकर पार्श्व में चला जाता है। जनरव से सभा-भवन गूँज रहा है। इतने में यवनिका उठती है]

जैतराव परमार— *(काका कान्ह से)* महामात्य नहीं दिखलाई पड़ते।

काका कान्ह—समय पर जब कोई उपस्थित न हो तो समझ लीजिए कि अवश्य कुछ दाल में काला है।

चामुण्डराय—यह बात मेरी समझ में भी नहीं आती कि एक तो महाराज पानीपत से अभी तक नहीं लौटे और दूसरे महामात्य भी अनुपस्थित हैं।

समरसिंह—ऐसा पहले तो कभी नहीं हुआ! आज कैसे हो रहा है। यह बात कुछ आशंका उत्पन्न करती है। इसका निवारण आवश्यक हो गया है।

चन्दपुण्डीर— *(कवि चन्द के पास जाकर उसके कान में)* किसी प्रतिहारी को भेजिए। महामात्य आवें चाहे न आवें पर पता तो चलना चाहिए कि वह गये कहाँ हैं?

जैतराव परमार—महाराज तो यहाँ हैं नहीं, दो दिन पूर्व रात में आवश्यक कार्य से आये थे। फिर तुरन्त मृगया के लिए पानीपत लौट गये।

काका कान्ह— *(आँखों की स्वर्णपट्टी पर हाथ रखकर)* महाराज के शासनकाल में यह दुर्व्यवस्था मैं पहली बार देख रहा हूँ। सभा की कार्यवाही प्रारम्भ होना तो दूर, हमें इस बात की सूचना तक नहीं दी जाती कि महामन्त्री कहाँ गये हैं। आज कई दिनों से मैं उन्हें अपने बीच नहीं देख रहा हूँ। लोग चाहे जो समझें, लेकिन मेरे लिए यह बड़ी चिन्ता का विषय है।

कम आश्चर्य की बात नहीं कि महाकवि चन्द यहाँ उपस्थित हैं। उनको महाराज का मित्र होने का गौरव प्राप्त है। तिस पर भी हमको कोई ठीक-ठीक सूचना नहीं मिल रही है। इस स्थिति को मैं राज्य के लिए अत्यन्त चिन्ताजनक मानता हूँ।

जैतराव परमार– *(उठकर)* जैसा कि मैंने अभी आपको बतलाया, महाराज पुनः पानीपत लौट गये। अभी दो दिन पूर्व महाराज रात में आये थे किन्तु फिर ठहरे नहीं। रात को ही पुनः पानीपत लौट गये।

काका कान्ह–मान्य सदस्य जैतराव परमार महारानी इच्छारानी के सगे भाई हैं, इसलिए उनकी सूचना अवश्य विश्वसनीय होगी। किन्तु उनके कथन से तो हमारी आशंकाएँ तथा उलझनें और भी अधिक बढ़ गई हैं। महाराज के लिए भी यह बात अस्वाभाविक-सी जान पड़ती है। अवश्य ही इसमें कोई रहस्य है।

चन्दपुण्डीर–मुझे तो इसमें रहस्य की कोई बात जान नहीं पड़ती। अपनी-अपनी इच्छा और रुचि की बात है। वह पानीपत केवल मृगया के लिए ही गये हैं।

काका कान्ह–अच्छा, महाराज तो मृगया के लिए पानीपत चले गये, परन्तु महामात्य कहाँ गये ?

चन्दपुण्डीर–बस, यही प्रश्न बार-बार उठता है कि महामात्य कहाँ गये हैं ? एक बात की सूचना मैं आपको और दे दूं कि मैं जब उनके भवन में उनसे मिलने गया, तो उनकी धर्मपत्नी महामाया ने भी बड़ी चिन्ता प्रकट की। अन्त में वह रो पड़ी।

काका कान्ह–वास्तव में यह बड़े दुःख का विषय है। मैंने कभी ऐसे अवसर की कल्पना न की थी। इस बार ज्योंही महाराज आयेंगे, त्योंही उनसे स्पष्ट कहना होगा कि अगर यही हाल रहा, तो महाराज अनंगपाल का स्वप्न भंग हो जायगा। अन्त में महाकवि चन्द से मेरा नम्र निवेदन है कि मौन त्यागकर अब वह वस्तुस्थिति का स्पष्टीकरण करने की कृपा करें।

चन्द–माननीय सभासदो और बन्धुओ ! परिस्थिति वास्तव में कुछ गम्भीर हो

गई है। जिन बातों की मैं आशा भी नहीं करता था, अचानक वही बातें अत्यन्त कुरूपता के साथ हमारे सामने उपस्थित हो रही हैं। अत्यन्त दुःख के साथ मुझे सूचित करना पड़ता है कि महामात्य कैमास अब इस संसार में नहीं हैं।

[एकाएक कोलाहल बढ़ जाता है। चारों ओर से लोग—एं ! महामात्य इस संसार में नहीं ! . . . हाय, हाय यह क्या हुआ ! . . . महामात्य हमको छोड़कर चल दिये ! . . . . परन्तु उनका देहान्त हुआ कैसे ! . . . और उनका शव कहाँ है, शव !! . . . हाँ हाँ, शव कहाँ छिपा दिया गया ! . . . . अन्त में घण्टा बजता है और धीरे-धीरे कोलाहल शान्त होता है और चन्द पुनः बोल उठते हैं]

चन्द—सुनिए, उनको राजनर्तकी कर्नाटकी के साथ प्रेम-वार्ता करते हुए जब महाराज ने देख लिया, तो वह इस दृश्य को सहन न कर सके। कृपाण उनके पास थी, धनुषबाण उनके हाथ में। किन्तु एक तो उनके सामने झरोखा था, दूसरे आकाश में बादल घिरे थे। इस कारण उनके सामने अँधेरा था, परन्तु दैवयोग से उसी समय कौंधा लटका, बिजली चमकी और जिस समय महाराज के कानों में कर्नाटकी के प्रति महामात्य का यह वाक्य पड़ा . . . ''बस कर्नाटकी, आज से तुम मेरी हो,'' उसी क्षण महाराज का बाण महामात्य के कण्ठ के पार हो गया।

[पुनः कोलाहल उत्पन्न हो उठता है—अरे ! हमारे महामात्य इतने गिरे हुए थे ! . . . परदे की ओट में क्या नहीं होता ! . . . भगवान् की इस सृष्टि मे जो कुछ होता है, सब अच्छा होता है . . . मनुष्य अपने कर्म का फल यहीं भोग लेता है। . . . पुनः घण्टा बजता है। लोग शान्त हो जाते हैं और चन्द बोल उठते हैं]

. . . इस घटना के कारण महाराज, स्वयं बहुत दुःखी हैं। किन्तु भावी को कौन टाल सकता है। दुःख मुझको भी बहुत है। महामात्य की सेवाएँ हमें सदा स्मरण रहेंगी, किन्तु उनका यह चरित्र उनके पद के लिए बहुत ही निम्न श्रेणी का सिद्ध हुआ। उनका आसन जनता के सबसे बड़े सेवक के नाते एक ऐतिहासिक महत्व रखता था।

काका कान्ह—अच्छा, महामात्य तो अपनी पिपासा का फल पा गये, उस नर्तकी का क्या हुआ ?

चन्द—महाराज ने तो उसको उसी कक्ष में बन्द करके उसके द्वार बन्द करवा दिये थे, किन्तु दूसरे दिन पता चला कि वह किसी प्रकार अपने प्राण बचाकर भाग गई है। कहाँ गई, इसका अभी तक कोई पता नहीं चला।

राजगुरु—जो भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि स्थिति कुछ ऐसी हो गई है कि नये महामात्य का चुनाव किये बिना राज्य-व्यवस्था का कार्य एक पग भी नहीं बढ़ सकता। मेरी समझ में जो लोग यहाँ उपस्थित हैं, उनमें जैतराव परमार इस पद के सर्वथा उपयुक्त हैं।

काका कान्ह—भाई जैतराव परमार योग्यता से, अनुभव से और साथ ही राज्य के प्रति अपनी सेवाओं के बल से इस पद के सर्वथा उपयुक्त हैं।

चामुण्डराय—काका जी के मत से मैं पूर्णतया सहमत हूँ।

चन्द—यद्यपि महाराज पृथ्वीराज इस समय अपने आसन पर विराजमान नहीं हैं, किन्तु उनका प्रताप काम कर रहा है। मैं अब यह जानना चाहता हूँ कि भाई जैतराव परमार को महामात्य बनाने के सम्बन्ध में किसी को कोई विरोध तो नहीं है ?

चामुण्यराय— *(उठकर)* भाई जैतराव इतने लोकप्रिय हैं कि उनका विरोध कोई कर ही नहीं सकता।

काका कान्ह—तो फिर मेरी राय में सर्वसम्मति से जैतराव परमार को महामात्य बनाना स्वीकार कर लिया जाय और यह प्रस्ताव अन्तिम स्वीकृति के लिए महाराज के पास भेज दिया जाय।

[हर्ष-ध्वनि]

चन्द—मैं काका जी की सम्मति से सर्वथा सहमत हूँ और साथ ही परमार जी से प्रार्थना करता हूँ कि महाराज की अनुपस्थिति में आज की सभा में महामात्य कैमास के आकस्मिक निधन के उपलक्ष्य में वह एक शोक-प्रस्ताव का प्रारूप हमारे सामने उपस्थित कर अनुग्रहीत करें।

जैतराव परमार—माननीय सभासदो ! आपने जिस सेवा का अवसर मुझे प्रदान किया है उसके लिए मैं कहाँ तक योग्य हूँ यह तो समय ही बतायेगा, किन्तु इस समय मेरी प्रार्थना है कि मेरे इस निर्वाचन पर न तो किसी प्रकार की

करतल-ध्वनि की जाय, न कोई हर्षोद्‌गार प्रकट किया जाय। महामात्य कैमास के निधन का शोक-प्रस्ताव मैं अभी आप लोगों के समक्ष उपस्थित करता हूँ। इस समय मेरे लिए यह प्रसंग सबसे अधिक दुःखद है कि जब महामात्य का आकस्मिक निधन हो गया है तब हम इसी समय, अकल्पित रूप से, उनके पद का निर्वाचन कर रहे हैं। आप लोग मुझे क्षमा करें। महाराज की अनुपस्थिति में जो कुछ भी निर्णय आप यहाँ करेंगे, उसका कोई वैधानिक महत्व न होगा। इसलिए...।

[सहसा सिंहासन के पृष्ठ-द्वार से महाराज पृथ्वीराज आ पहुँचते हैं। एकाएक सभा-भवन में हलचल-सी मच जाती है। चारों ओर से लोग बोल उठते हैं– ''महाराज आ गये, महाराज आ गये''। कवि चन्द क्षण-भर के लिए उनके पास जाते हैं और पुनः लौटकर अपने आसन पर आ बैठते हैं]

पृथ्वीराज–प्रिय सामन्तो और सभासदो ! मैं आज यहाँ सम्राट् के रूप में उपस्थित अवश्य हूँ, किन्तु मुझे दुःख के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि मैं इस सभा के सामने अपराधी हूँ। मेरे ही बाण से महामात्य कैमास का प्राणान्त हुआ है। मैं इसके लिए कहाँ तक अधिकारी था, नहीं जानता। किन्तु इस विषय में मैं इतना अवश्य जानता हूँ कि वह दृश्य ही इतना भावात्मक था कि मैं रुक न सका। मैंने उस क्षण अनेक बार सोचा कि मैं क्या कर रहा हूँ ! बार-बार मेरे कानों में आप लोगों के वाक्य जनवाणी के रूप में गूंजने लगे–'हमारे महामात्य इतने गिरे हुए !–महामात्य का अन्तरंग जीवन इतना कलुषित ! इतने बड़े देश की शासन-सत्ता को सुव्यवस्थित-संगठित रखने के लिए जो पद महान् उत्तरदायित्वपूर्ण हो, उसका अधिकारी लम्पट !' मुझे ऐसा जान पड़ा–यह पाप उनका नहीं, मेरा है। बाण वास्तव में मैंने उनको नहीं मारा, अपने वक्ष पर मारा है। *(आँसू गिरने लगते हैं। अनेक सामन्त भी रो पड़ते हैं)* महामात्य आयु में मेरे समान थे। उनके घर में उनकी धर्मपत्नी अभी उपस्थित है। फिर भी वह अपनी मर्यादा भूल बैठे ! राजभवन में ही उन्होंने कर्नाटकी से मिलना-जुलना प्रारम्भ कर दिया था। जब उन्होंने महामात्य-पद के गौरव की हत्या की, तब मुझे उस गौरव की रक्षा के लिए उसके हत्यारे की हत्या करनी ही पड़ी। उन्होंने उस प्रेम और आदर की भी हत्या की, जो मैं उनके

प्रति अपने हृदय में रखता था। उन्होंने अपनी धर्मपत्नी के साथ की हुई उन प्रतिज्ञाओं की भी हत्या की, जिनमें पाणिग्रहण के समय अग्नि, सूर्य और वरुण आदि देवताओं की साक्षी थी। महामात्य का पद कोई साधारण पद नहीं। वह राज्य-निर्माता का महत्तम पद होता है। महामात्य ने अपने इस आचरण से मेरा मस्तक झुका दिया है। उत्तेजना के वशीभूत होकर मैंने उनका प्राणान्त तो कर दिया लेकिन मैं आप लोगों को कैसे समझाऊँ कि मुझे कितना दुःख है।...

[महाराज पृथ्वीराज इतना ही कह पाते है कि उसी समय चन्द कवि उठकर खड़े हो जाते हैं]

चन्द –आप लोगों को यह जानकर आश्चर्य और साथ-ही-साथ दुःख भी होगा कि तीन दिन से महाराज ने भोजन त्याग रखा है। मेरी धारणा है कि महाराज के जीवन में यह पहला और अन्तिम अवसर है।

पृथ्वीराज–मैंने एक अपराध और किया है। महामात्य का शव उसी कक्ष की भूमि पर जिसमें वह उपस्थित थे समाधिस्थ अवस्था में अब तक रखा हुआ है। अब उनका राजकीय सम्मान के साथ विधिवत् अग्नि-संस्कार किया जायगा। मैंने अभी सुना है कि राज-कार्य-संचालनार्थ आपने जैतराव परमार को महामात्य के पद के लिए मनोनीत कर लिया है। मैं इसे स्वीकार करता हूँ। यह समय बड़े संकट का है। कितना आत्मदाह सहन कर मैं जीवित हूँ, यह मेरे सिवा कौन जानता है! कौन जानता है कि मेरे ऊपर क्या बीत रही है। लेकिन इसी राज्य के कल्याण के अर्थ, मेरी विनय है कि आप लोग धैर्य से काम लें। जो कुछ हुआ सो हुआ, महामात्य की दिवंगत आत्मा को शान्ति तो मिले। पर साथ ही एक बात और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ और वह यह कि अगर राज्याधिकारियों ने फिर ऐसा कोई उदाहरण उपस्थित किया तो इसी प्रकार दूसरे दिन आप सुनेंगे कि पृथ्वीराज इस संसार में नहीं है। मैं अपने राज्य में ऐसी व्यवस्था का स्वप्न देखना चाहता हूँ जिसमें एक भी आवारा न हो और एक भी दुराचारी न हो।

['महाराज पृथ्वीराज की जय! हमारे महाराज बिल्कुल निरपराध हैं' की ध्वनियों के साथ यवनिका गिरती है]

तृतीय अंक

प्रथम दृश्य

स्थान—पृथ्वीराज का जन-सम्पर्क कक्ष।

समय—लगभग चार बजे मध्याह्नोत्तर।

[दृश्य-पूर्ववत्]

पृथ्वीराज—कहिए रामानन्दजी, कैसे पदार्पण हुआ आपका ?

रामानन्द—महाराज ! हम हाथ की रेखाएँ देखकर भविष्य का सारा खेल बतलाते हैं।

पृथ्वीराज— *(मुस्कराते हुए)* भविष्य के सारे खेलों की भूमिका तो वर्तमान पर खड़ी रहती है रामानन्दजी।

रामानन्द—महाराज ! वर्तमान के सहारे खड़ा होने वाला भविष्य तो पुरुषार्थ की देन है पर आप जानते हैं कि मनुष्य का प्रयत्न सदा सफल नहीं होता। ऐसी दशा में वह मनुष्य कहाँ जाय जिसका पुरुषार्थ सफल होते-होते रह जाता है। असफल हो जाने पर वह जियेगा कैसे—साँस कैसे लेगा ! इसलिए भविष्य का फलाफल समय से पूर्व जान लेने का एक महत्व है महाराज।

पृथ्वीराज—पर भविष्य का फलाफल पहले जान लेने में एक बात की आशंका है।

रामानन्द—किस बात की ?

पृथ्वीराज—इस बात की कि प्रतिकूल परिणाम प्रकट होते ही उद्योग और प्रयत्न स्वभावतः शिथिल पड़ जाते हैं और मनुष्य जीती बाज़ी हार जाता है। इस प्रकार भविष्य का ज्ञान ही उसकी पराजय का मूल कारण बन जाता है।

रामानन्द—इस आशंका और शैथिल्य—दोनों में ही महाराज ऐसे व्यक्ति को अपने सामने देख रहे हैं जो न साहसी है, न वीर। पर मैं उस व्यक्ति को अपने

समक्ष देख रहा हूँ जो आपत्ति की घड़ियों में अपने बौद्धिक प्रयोग, अटूट धैर्य तथा स्पृहणीय वीरता के लिए आज संसार में सबसे अधिक प्रसिद्ध, सबसे बड़े सम्मान का अधिकारी है।

[पृथ्वीराज प्रसन्न हो उठते हैं]

पृथ्वीराज–अच्छी बात है रामानन्दजी। *(रामानन्द की ओर हाथ बढ़ाकर)* लीजिए, देखिए और बतलाइए, भविष्य का क्या योगायोग है।

रामानन्द– *(हाथ सामने आते ही अपने हाथ में लेकर)* योग नहीं महाराज, परम पावन संयोग है। शीघ्र ही महाराज एक ऐसी राजकुमारी का पाणि-पल्लव ग्रहण करेंगे जो भक्ति, निष्ठा और प्रेम में भवानी पार्वती और रूप-सौन्दर्य में अतुल गुणागरी होगी। यद्यपि उसे प्राप्त करने में महाराज की राजकीय शक्ति का अत्यधिक क्षय होगा, किन्तु अन्त में विजयश्री महाराज को ही वरण करेगी।

पृथ्वीराज– *(चिन्ता में पड़कर)*. 'राजकीय शक्ति का अत्यधिक क्षय' से अभिप्राय क्या है आपका ?

रामानन्द–महाराज ! आर्य की भाग्य-लिपि ही कुछ ऐसी है कि अधिकांश रानियाँ आपके विजित युद्ध की देन होंगी। पहले युद्ध होगा, युद्ध में विजय प्राप्त होगी, विजय के पश्चात् सन्धि होगी। फिर उसी सन्धि के माध्यम से राजकुमारी आर्य की जीवन-संगिनी बन जायेगी। एक संयोग तो ऐसा आयेगा कि कन्या दे देने पर भी पिता की प्रतिहिंसा शान्त न होगी। शत्रुओं का सहयोग प्राप्त कर जीवन-पर्यन्त वह महाराज से युद्ध करता रहेगा।

पृथ्वीराज– *(मुस्कराते हुए)* तो क्या मेरा यह समस्त जीवन युद्ध के ही काले बादलों से घिरा रहेगा ? कभी मैं सुख की नींद न सो सकूंगा ?

रामानन्द–महाराज ! ये युद्ध तब तक बन्द नहीं हो सकते, जब तक खण्ड-राज्यों में बँटा हुआ हमारा यह महादेश संगठित होकर एक नहीं हो जाता और अभी तो हम इसकी आशा भी नहीं कर सकते। अभी तो हमें बहुत दुर्दिन देखने हैं।

पृथ्वीराज–क्या कह रहे हो रामानन्दजी ! पृथ्वीराज रात-दिन उसी स्वर्ण-दिवस

का स्वप्न देखता रहता है, जब यह खण्ड-खण्ड भारत अखण्ड बनकर विश्व के सामने उसी प्रकार मस्तक ऊँचा करके खड़ा हो जायगा जिस प्रकार कोई वनराज केसरी खड़ा होता है।

रामानन्द—क्षमा करें महाराज, वह दिन अभी बहुत दूर है, बहुत दूर।...अच्छा तो अब आज्ञा हो महाराज।

पृथ्वीराज—अभी कैसे, आचार्य रामानन्द! मेरे अतिथि के रूप में राजभवन में ठहरें और दो-एक दिन विश्राम करें। कल फिर भेंट होगी।

रामानन्द—जो आज्ञा महाराज। *(प्रस्थान)*

पृथ्वीराज—*(मन्द स्वर में)* आर्य की भाग्य-लिपि ही कुछ ऐसी है कि अधिकांश रानियाँ आपके विजित युद्ध की देन होंगी।...एक संयोग तो ऐसा आयेगा कि कन्या दे देने पर भी पिता की प्रतिहिंसा शान्त न होगी। शत्रुओं से सहयोग प्राप्त कर वह जीवन-पर्यन्त महाराज से युद्ध करता और विफल-मनोरथ होता रहेगा।

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी—घणी क्षमा, महाराज।

पृथ्वीराज—कहो प्रतिहारी?

प्रतिहारी—चित्रकार प्रेमांकुर महाराज से मिलना चाहते हैं।

पृथ्वीराज—उन्हें सम्मानपूर्वक ले आओ।

[चित्रकार प्रेमांकुर का प्रवेश]

पृथ्वीराज—आइए चित्रकार महोदय! 'प्रेमांकुर' नाम तो आपका बड़ा प्यारा है।

प्रेमांकुर—महाराज! नाम नहीं, काम प्यारा होता है, यही हम प्रायः सुनते आये हैं। और महाराज का जैसा नाम है उसी के अनुरूप उनके काम भी हैं। कदाचित् इसी कारण उनको मेरा नाम भी प्यारा लगा है।

पृथ्वीराज—*(मुस्कराते हुए)* कह नहीं सकता, क्या बात है। न जाने क्यों, प्रेमांकुर शब्द से बड़ी प्रीति है मुझे।...अच्छा, पदार्पण कैसे हुआ प्रेमांकुर

कलाकार ?

प्रेमांकुर—महाराज ! जैसे प्रेम का अंकुर अकारण हृदय में उदय नहीं होता, वैसे ही प्रेमांकुर चित्रकार का भी अकारण कहीं जाना नहीं होता।

पृथ्वीराज—तो फिर उस कारण की भी व्याख्या कर दें, कलाकार !

प्रेमांकुर—महाराज जानते हैं—संसार में बिखरे हुए सौंदर्य को काग़ज़ पर उतारना ही मेरी कला है। पर इस बार मैंने एक नवीन प्रयोग किया है।

पृथ्वीराज—वह क्या ?

प्रेमांकुर—मैंने उस सौंदर्य की कल्पना की है जो सजीव है, जिसका हमारे आज के जगत् के साथ एक सीधा सम्बन्ध है।

पृथ्वीराज—अपने अभिप्राय को थोड़ा और स्पष्ट करने की कृपा करो प्रेमांकुर !

प्रेमांकुर—महाराज ! मैंने उन राजकुमारियों के चित्र बनाये हैं, जो आज हमारे इस महान् देश की एक निधि हैं, जिनका सौन्दर्य शताधिक परदों से आवृत और प्रच्छन्न रहने पर भी आज जन-जंन की चर्चा का विषय बन गया है, जो अपने गुण, कर्म और स्वभाव से सर्वथा मनोहर और ज्योतिर्मयी हैं। जहाँ वे खड़ी हो जाती हैं वहाँ अन्धकार कोने में छिप जाता है और चन्द्रमा अपनी संपूर्ण कलाओं के साथ उदय हो उठता है। उनकी मुस्कान शिशु जैसी पवित्र, उनका हास जैसे कमल-दल विकसित हो रहे हों। उनका पद-संचालन राजहंसिनी के समान और उनकी शोभा तो रति, रम्भा और उर्वशी से भी अधिक है।

पृथ्वीराज—पर इस चित्रावली के प्रदर्शन का हेतु क्या है प्रेमांकुर ?

प्रेमांकुर— *(सिटपिटा जाता है)* हेतु ?...हेतु तो महाराज केवल प्रेमांकुर है।

पृथ्वीराज—अभिप्राय ?

प्रेमांकुर—अभिप्राय ? अभिप्राय यह कि जब किसी राजकुमारी का चित्र महाराज की रुचि के अनुकूल होगा, तभी मेरा काम बनेगा और तभी साथ ही काम भी सार्थक और सफल हो जायगा।

पृथ्वीराज—अच्छा प्रेमांकुर ! यदि तुम्हारी कला ने मेरे मन में भी प्रेमांकुर उत्पन्न

कर दिया, तो मैं तुमको समुचित पुरस्कार तो दूंगा ही, उसके बाद अपना एक मान्य सामन्त भी बना दूंगा।

प्रेमांकुर—और यदि ऐसा न हुआ, यदि मेरी कला महाराज को प्रभावित न कर सकी, तो मैं फिर कभी आपको अपना मुँह न दिखाऊँगा।

पृथ्वीराज—नहीं प्रेमांकुर ! कलाकार के लिए ऐसा कोई प्रतिबन्ध न होगा। अच्छा, तो अब चित्र दिखाओ।

[प्रेमांकुर पृथ्वीराज को चित्रावली दिखाता है]

प्रेमांकुर—महाराज ! यह देखिए गुर्जर की राजकुमारी हीरामणि है। शरीर से तन्वंगी, मन और नयन से विशाल ! गति में हँसिनी-सी, मति में तिलोत्तमा-सी, अवस्था में बीस की, वार्ता-विनोद में भोली केवल बारह की।

पृथ्वीराज— *(गम्भीरता से)* देखा, अच्छा चित्र है। और ?

प्रेमांकुर— *(दूसरा चित्र दिखलाते हुए)* यह मण्डोवर की राजकुमारी सोनापरी है महाराज ! जैसा इसका नाम है, वैसी ही गुणागरी भी है यह।

पृथ्वीराज— *(हँसते हैं)* कलाकार प्रेमांकुर कदाचित् यह भूल रहे हैं कि यह सोनापरी मेरी साली है।

प्रेमांकुर—महाराज ! अपराध क्षमा हो। यह सोनापरी मण्डोवर के परिहार राजा नाहरराय की सगी पुत्री नहीं, उनकी भतीजी—नरसिंहराय की राजकन्या है।

पृथ्वीराज— *(आश्चर्य से)* अच्छा प्रेमांकुर, मैं मान गया तुम को। अब और चित्र दिखलाओ।

प्रेमांकुर—देखिए महाराज, यह चित्र देवगिरि यादव-नरेश की सबसे बड़ी कन्या पद्मावती का है। महाराज ! कहते हैं जैसा राजकुमारी का नाम है, रूप और सौन्दर्य भी उसी के समान है। हँसती है तो खिले हुए पद्म के समान प्रतीत होती है। जब गम्भीर हो जाती है, तो इसका मुख बन्द कमल-सा बन जाता है। महाराज ! इसके नयनों के पलक तो इतने सुन्दर हैं कि प्रत्यक्ष जान पड़ता है मानो चन्द्रदेव उदीयमान अंशुमाली से कह रहे हों—अभी ठहरो,

मेरी मैना सो रही है।

पृथ्वीराज—वाह प्रेमांकुर! पद्मावती वास्तव में पद्मावती है। *(हँसकर)* मगर एक बात कदाचित् कलाकार भूल रहे हैं कि यह चित्र कई वर्ष पूर्व का है। राजकुमारी पद्मावती अब राजकुमारी नहीं रही, अब तो वह रानी पद्मावती बनकर मेरे राजभवन की शोभा बढ़ा रही हैं। पहले उसका विवाह कन्नौज-नरेश जयचन्द के अनुज वीरचन्द कमध्वज से होने वाला था, पर जब मुझे विदित हुआ कि पद्मावती का ध्यान मेरी ओर है, तब मुझे राठौर-नरेश जयचन्द से युद्ध करना पड़ा था। इस युद्ध में भी मेरे कई सामन्त काम आये थे।

प्रेमांकुर— *(मुस्कराता हुआ)* समझा महाराज! अब मैं उन्हीं राजकुमारियों के चित्र दिखाऊँगा जो अभी तक राजकन्या ही हैं। जो इस सीमा तक असूर्यम्पश्या हैं कि उन्होंने अपने प्राणेश्वर की कल्पना तक भी नहीं की। लीजिए, *(चित्र सम्मुख रखकर)* अब यह चित्र देखिए। यह उस राजकन्या का है जिसके विषय में कहा जाता है कि इसका पाणिग्रहण-संस्कार किसी साधारण राजा के साथ नहीं, सम्राट् के साथ होगा।

पृथ्वीराज— *(आश्चर्य से)* पर यदि ऐसा न हुआ तो?

प्रेमांकुर—महाराज! एक तो ऐसा होगा नहीं कि यह राजकन्या जिसको चाहे, वह राजपुरुष ही इसको न चाहे, और फिर ऐसा भी नहीं हो सकता कि जिसको राजकन्या चाहे, राजेश्वर उसके साथ अपनी कन्या का विवाह करने नें आनाकानी करे।

पृथ्वीराज—अच्छा प्रेमांकुर! बस, बहुत हो चुका। अब मुझे और किसी चित्र को देखने की आवश्यकता नहीं रही। मैं केवल एक बात तुम से कहना चाहता हूँ कि अगर सम्भव हो तो तुम पता लगाकर इतना बता जाना कि यह राजकन्या किसको अपना हृदय सौंपना चाहती है; किसकी मूर्ति इसके अन्तःकरण में विराजमान हो चुकी है। परन्तु नहीं, नहीं प्रेमांकुर! मैं अपने शब्द वापस लेता हूँ। तुम किसी से कुछ न कहना, यह भी न कहना कि

संसार में कोई पृथ्वीराज भी है जो इस चित्र को देख चुका है।

प्रेमांकुर– *(आश्चर्य से)* महाराज को हो क्या गया? महाराज कहने क्या लगे? अगर महाराज की ऐसी कामना हो तो मैं संयोगिता के पास यह सन्देश भी भेज सकता हूँ कि महाराज तुम्हारा चित्र देखकर अपने-आपको खो बैठे हैं।

पृथ्वीराज– *(सत्वर)* नहीं, नहीं, प्रेमांकुर! ऐसी कोई बात नहीं। पृथ्वीराज अब कोई विवाह करना नहीं चाहता। वह देश, काल और परिस्थिति से परिचित है। भारत की भावी सन्तान के आगे वह ऐसा कोई उदाहरण उपस्थित करना नहीं चाहता, जिससे उसको यह कहने का मौका मिले कि पृथ्वीराज एक घोर विलासी सम्राट् था, वह विवाह के नाम पर युद्ध करता था। ऐसे घोर युद्ध, जिसमें सहस्रों सैनिक समाप्त होकर धूल में मिल जाते थे—सदा के लिए पृथ्वी पर सो जाते थे।

प्रेमांकुर—महाराज! युद्ध होते ही इसलिए हैं कि या तो अथाह धनराशि मिलने की सम्भावना हो, या राज्य-वृद्धि की आशा। यदि ये दोनों बाते न हों तो फिर नारी-सौन्दर्य की मोहमाया के कारण युद्ध होते हैं और होते ही रहेंगे।

पृथ्वीराज—नहीं प्रेमांकुर! मेरी ये आँखें उन सैनिकों के बलिदान के बहते हुए रक्त को स्पष्ट देख रही हैं, जो केवल इसलिए बहाया गया कि अजमेर-नरेश महाराज सोमेश्वर के युवराज किसी राजकुमारी को वरण करना चाहते थे। मुझे अनुभव हो रहा है प्रेमांकुर, यदि एक नारी के कारण इतना रक्तपात हो तो मानवता का इससे बड़ा अपमान दूसरा हो ही नहीं सकता। भविष्य में ऐसा न होगा प्रेमांकुर, ऐसा कभी न होगा।

प्रेमांकुर—महाराज! मैंने पृथ्वीराज का नाम मात्र सुना था, प्रत्यक्ष-रूप से महाराज के दर्शन न कर पाया था। महाराज क्षमा करें,—मैं तो अब तक यही समझता रहा कि राजा लोग विधि के विधान से ही ऐसा सौभाग्य लेकर उत्पन्न होते हैं कि वे एक के स्थान पर अनेक विवाह कर अनेक रानियाँ रख सकते हैं। लेकिन आज मेरा यह भ्रम दूर हो गया। धन्य हैं महाराज, जो इस परम्परा के दास नहीं बनना चाहते।

पृथ्वीराज–नहीं, नहीं प्रेमांकुर ! *(आवेश में)* पृथ्वीराज इस परम्परा में अपवाद नहीं है जो भारतीय नरेशों को इसका जन्मसिद्ध अधिकारी मानती आई है। *(आँखों में आँसू भरकर)* पृथ्वीराज भी उसी पंक्ति में बिठाने योग्य है जो अपनी भोग-लिप्सा के आगे न तो नैतिक निष्ठा की ओर ध्यान देता है, न पीड़ित मानवता की ओर। केवल ऐश्वर्य, केवल भोग-विलास ही तो इस रक्त-पिपासु राजसत्ता का एकमात्र उद्देश्य रहा है प्रेमांकुर ! पृथ्वीराज इतना जानता है *(एक नि:श्वास के साथ)* और इसे दु:ख के साथ स्वीकार भी करता है। प्रेमांकुर ! यह बात मैं कभी न भूलूंगा कि अपने नाम के आकर्षण के बहाने तुमने आज मुझे एक नवीन प्रेरणा दी है, एक मार्ग सुझाया है। मैं यह बात कभी नहीं भूलूंगा कि प्रेमांकुर की चित्रकला में कर्तव्य के अंकुर उत्पन्न करने की अद्भुत क्षमता है। *(थोड़ा रुककर)* जाओ प्रेमांकुर ! मेरी अतिथिशाला में विश्राम करो। विश्वास रखो कि आज से तुम हमारे एक मान्य सामन्त बन गये हो।...अब कल इसी समय फिर भेंट होगी !

प्रेमांकुर– *(हाथ जोड़ते हुए, उठकर)* जय हो महाराज की ! महाराज पृथ्वीराज की सदा जय हो।...सचमुच जैसा सुनता था वैसा ही पाया। पृथ्वीराज वास्तव में पृथ्वीराज हैं।

[यवनिका गिरती है]

द्वितीय दृश्य

स्थान—महाराज पृथ्वीराज का जन-सम्पर्क कक्ष।

समय—सायंकाल लगभग छः बजे।

[दृश्य—पूर्ववत्]

प्रतिहारी—महाराज! कन्नौज-नरेश महाराज जयचन्द की राजधानी कन्नौज से एक जंगम आया है और महाराज से मिलना चाहता है।

चन्द—*(मुस्कराते हुए)* लीजिए महाराज, फिर कोई ठगिया आ पहुँचा। बुलाइए, बुलाइए, स्वागत कीजिए महाराज।

पृथ्वीराज—*(प्रतिहारी से)* जाओ, भेज दो उसको।

[प्रतिहारी की प्रस्थान]

पृथ्वीराज—*(चन्द से)* देखो चन्द! संसार में न तो सभी ठग होते हैं न धर्मात्मा—यह सही है; लेकिन यह भी उतना ही सही है कि एक ही घटना से बड़े-से-बड़ा ठग भी धर्मात्मा बन सकता है और बड़े-से-बड़ा धर्मात्मा भी विचलित होकर पाप के मार्ग पर जा सकता है। *(तीव्रता से)* किसी के भाल पर यह नहीं लिखा रहता कि कौन ठग है और कौन धर्मात्मा। व्यवहार से पहले हमें किसी पर सन्देह करने का अधिकार नहीं है।

[जंगम का प्रवेश]

जंगम—*(झुककर)* महाराज की जय हो।

पृथ्वीराज—कहो जंगम, कन्नौज का क्या समाचार है?

जंगम—महाराज! बड़ा गड़बड़ हो गया है! कन्नौज के राजा राजसूय-यज्ञ कर रहे थे। उसमें देश-देशान्तर के सैकड़ों नरेश उपस्थित थे। उसी समय महाराज जयचन्द ने राजकुमारी का स्वयंवर ठान लिया।

पृथ्वीराज–इसमें गड़बड़ क्या हुआ ? जब संयोगिता विवाह के योग्य हो गई है तो उसका स्वयंवर ठानना ही चाहिए था।

जंगम–महाराज ! गड़बड़ यह हुआ कि स्वयंवर-सभा के द्वार पर आपकी एक सोने की प्रतिमा स्थापित कर दी गई और सोने की ही छड़ी उसके हाथ में दे दी गई।

पृथ्वीराज– *(भौंहे चढ़ाकर)* स्वयंवर-सभा के द्वार पर मेरी प्रतिमा स्थापित की गई ?

जंगम–हाँ महाराज, द्वार पर! उस सभा में धीरे-धीरे देश-देशान्तर के राजा लोग आ-आकर बैठने लगे। थोड़ी देर में राजकुमारी संयोगिता हाथ में जयमाला लिए अनेक सखियों के सहित स्वयंवर-सभा में पधारीं।

चन्द– *(उत्सुकता से)* अच्छा, फिर क्या हुआ जंगम, जल्दी बताओ ? क्या संयोगिता ने अपने पिता के प्रभाव में आकर किसी दूसरे राजा के गले में जयमाला डाल दी, और यही समाचार देने के लिए तुम आये हो यहाँ ?

पृथ्वीराज–हाँ, हाँ, कह दो ऐसा ही हुआ। *(मुस्कराते हैं)*

जंगम–नहीं महाराज, ऐसा नहीं हुआ, नहीं हुआ। ऐसा हो भी नहीं सकता। कन्नौज के राजकवि जगनिक साथ होकर प्रत्येक राजा का परिचय प्रशंसा के रूप में देते जाते थे। धीरे-धीरे जब सभी राजाओं के पास से होकर संयोगिता महाराज की प्रतिमा के निकट पहुँची, तब राजकवि जगनिक की वाणी एकाएक संकुचित हो उठी। उसने आपके नाम और यश का बहुत साधारण रूप से वर्णन कर दिया।

पृथ्वीराज– *(आश्चर्य से)* कवि जगनिक ने मेरा वर्णन बहुत साधारण रूप से किया, अच्छा !

चन्द–तो भाई जगनिक, तुम कवि नहीं, चाटुकार हो। महाराज ! ऐसे ही व्यक्ति तो कवि-परम्परा के लिए कलंक बनते हैं। अच्छा हाँ, फिर क्या हुआ जंगम ?

जंगम–महाराज ! फिर भी राजकुमारी संयोगिता ने वह जयमाला आपकी स्वर्ण-प्रतिमा के गले में डाल दी।

पृथ्वीराज– *(प्रसन्न होकर)* कहो चन्द, अब क्या कहते हो ? मुझे वे सभी अवसर याद हैं, जब तुमने विवाह के नवीन अवसरों के सम्बन्ध में पहले अपना विरोध प्रकट किया और उसके पश्चात् सहयोग।

चन्द– *(महाराज को कुछ जवाब न देकर जंगम से)* अच्छा, फिर क्या हुआ जंगम ?

जंगम–तब राजा जयचन्द ने कहा–'बेटी भूल गई थी। एक बार पुनः फेरी की जाय।' तदनुसार राजकुमारी संयोगिता दूसरी जयमाला लेकर फेरी करने के लिए विवश की गई। किन्तु महाराज, किसी नरेश की ओर उसने अपनी दृष्टि तक न उठाई और अन्त में फिर आपकी ही स्वर्ण-प्रतिमा के गले में उसने जयमाला डाल दी।

चन्द–देखो जंगम ! तुम इस बात को कथा का रूप देने की चेष्टा मत करो। बल्कि अच्छा हो कि अन्तिम परिणाम पहले बता दो। फिर पूरी बात बाद में सुनाना।

जंगम–महाराज ! दूसरी बार भी जयचन्द को सन्तोष न हुआ। अतः राजकुमारी संयोगिता को तीसरी बार फेरी करने के लिए विवश किया गया। लेकिन परिणाम वही हुआ कि जयमाला उसने आपकी प्रतिमा के गले में डाली।

पृथ्वीराज–अब कहो चन्द ! क्या कहते हो ?

चन्द– *(पृथ्वीराज को कोई जवाब न देकर)* अब एक ही वाक्य में अन्तिम परिणाम बता दो जंगम, कि फिर क्या हुआ ?

जंगम–महाराज जयचन्द क्रुद्ध हो तुरन्त यज्ञ-मण्डप से उठकर राजप्रासाद में चले गये। तुरन्त महामात्य सुमन्त और कोटपाल रावण को बुलाकर उनको आदेश दिया कि गंगा-तट पर तुरन्त एक राजप्रासाद बनवाने की व्यवस्था की जाय। संयोगिता सबसे अलग उसी में रखी जायगी। बस महाराज, तब से राजकुमारी संयोगिता जाह्नवी-तट पर बने प्रासाद में अपनी एक सहस्र दासियों के साथ खिन्नमन और क्षीणतन अवस्था में रहती है।

पृथ्वीराज–बोलो चन्द ! अब तुम क्या कहते हो ?

चन्द–मैं अभी कुछ नहीं कहता। मैं पहले महाराज का मत जानना चाहता हूँ।

पृथ्वीराज–प्रतिहारी !

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी– *(दोनों हाथ जोड़े हुए)* आज्ञा महाराज !

पृथ्वीराज–देखो, इन्हें अतिथिशाला में ठहराओ। *(जंगम की ओर देखकर)* आप इस समय विश्राम करें, कल फिर भेंट होगी।

जंगम–जो आज्ञा महाराज ! *(प्रस्थान)*

पृथ्वीराज–देखो चन्द, यहाँ प्रश्न मेरे विवाह का नहीं, मानापमान का है। जो व्यक्ति अकारण मेरा अपमान करेगा उसके साथ शत्रु का-सा व्यवहार मुझे करना ही पड़ेगा। संयोगिता मुझे वरण करे या न करे, लेकिन जयचन्द को इस धृष्टता और उपहास का उत्तर मेरा यह धनुषबाण देकर ही मानेगा।

चन्द–महाराज ! इस बात पर पहले कुछ विचार कर लें, फिर निश्चय करें। आज महाराज जयचन्द की शक्ति भारतवर्ष में सर्वोपरि है। आप उन पर आक्रमण करेंगे तो क्या महाराज जयचन्द आपका सामना करने में कोई बाकी उठा रखेंगे ? आज उनके सैनिकों की संख्या अस्सी लाख से अधिक मानी जाती है।

पृथ्वीराज–मेरी शक्तियों को क्षीण समझने और मुझे हतोत्साह करने की चेष्टा मत करो चन्द ! मैं अपने एक सामन्त को सहस्र सैनिकों से अधिक शक्तिशाली मानता हूँ।

चन्द–मैं पहले की जानता था महाराज, कि संयोगिता के सौन्दर्य ने आपके मन को मोह लिया है। फिर अब तो महाराज के मानापमान का प्रश्न भी साथ जुड़ गया है। इसलिए महाराज को रोकना मेरे लिए दुष्कर है।

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी– *(नतमस्तक होकर)* घणी क्षमा महाराज ! कन्नौज-नरेश की राजधानी कन्नौज से उनके राजमन्त्री सुमन्त पधारे हैं।

पृथ्वीराज–उन्हें सम्मानपूर्वक ले आओ।

प्रतिहारी– *(विनत होकर)* जो आज्ञा महाराज !

[प्रतिहारी का प्रस्थान। कन्नौज के राजमन्त्री सुमन्त का प्रवेश]

सुमन्त– *(विनत होकर)* महाराज पृथ्वीराज की जय हो!

पृथ्वीराज–आइए महामात्य! कहिए, आपको कोई कष्ट तो नहीं हुआ। रात में निद्रा पूरी होने में कोई बाधा तो नहीं पड़ी ?

सुमन्त–महाराज पृथ्वीराज के आतिथ्य-सत्कार का क्या कहना! किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ महाराज।

पृथ्वीराज–और कहिए, महामात्य! कन्नौजाधिपति महाराज जयचन्द का कोई विशेष सन्देश तो नही है मेरे लिए ?

सुमन्त– *(मुस्कराते हुए)* महाराज जयचन्द का कहना है कि दिल्ली का राज्य पृथ्वीराज को मेरे मातामह महाराज अनंगपाल से मिला है। महाराज को विदित ही है कि मातामह अनंगपाल के ज्ञातव्य में वैधानिक रूप से मेरा भी अर्ध भाग निकलता है। इसलिए उचित तो यही है कि महाराज दिल्ली से लगाकर सौरों तक की आधी भूमि हमें दे दें।

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी– *(विनत होकर)* महाराज, कन्नौज से एक राजदूत आया है। महाराज से अभी मिलना चाहता है।

पृथ्वीराज– *(सुमन्त की ओर देखकर)* अच्छी बात है महामात्य, फिर भेंट होगी, तभी इसका निश्चित उत्तर दिया जायगा।

सुमन्त– *(उठकर)* जैसी इच्छा महाराज! *(प्रस्थान)*

पृथ्वीराज– *(प्रतिहारी से)* कन्नौज के राजदूत को भेजो।

प्रतिहारी– *(विनत होकर)* जो आज्ञा महाराज! *(प्रस्थान)*

चन्द–महाराज! आज आकाश में बादल छाये जान पड़ते हैं। दिन होने पर भी अँधेरा हो चला है।

पृथ्वीराज–कैसे भी बादल घिर आये हों और कैसा भी अँधेरा जान पड़ता हो चन्द! संसार का कोई भी कार्य कभी नहीं रुकता। काल के चरण सदा आगे बढ़ते जाते हैं। मनुष्य पैदा होता है और फिर मर जाता है। किन्तु काल कभी

फिरकर नहीं देखता, घूमकर नहीं देखता। बादल चाहे जैसे घिर आयें, हमारा कोई कार्य नहीं रुकेगा।

चन्द—महाराज कुछ भी कहें, लेकिन मुझे प्रतीत ऐसा ही हो रहा है कि ये बादल एक ऐसे संकट की सूचना देने आये हैं जिसके प्रभाव से हम बच न सकेंगे।

पृथ्वीराज—तो फिर चलो, जब भावी को रोक नहीं सकते तब फिर अपनी भावना और गति को रोककर ही क्या होगा?

[राजदूत का प्रवेश]

राजदूत—*(विनत होकर)* महाराज की जय हो।

पृथ्वीराज—कहो, कहो राजदूत! सब कुशल तो है?

राजदूत—महाराज कन्नौज-नरेश जयचन्द राठौर के अपरिमित ऐश्वर्य को तो महाराज जानते ही हैं। मगध, मिथिला, तैलंग, कर्नाटक, कोंकण, गुर्जर, अनहिलवाड़ा आदि पर उनका अखण्ड राज्य स्थापित है। अतः आजकल राजसूय-यज्ञ का आयोजन चल रहा है। उसी का निमन्त्रण-पत्र लेकर मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। यह महाराज का आदेश-पत्र है। उन्होंने आपके लिए द्वारपाल का पद नियत किया है। अतएव कृपा होगी यदि आप शीघ्र वहाँ उपस्थित होकर अपना पद सँभाल लें।

गोविन्दराय—कलियुग में भला ऐसा कौन है जो राजसूय-यज्ञ करने का साहस कर सके। छोटे-छोटे राज्यों पर आधिपत्य स्थापित कर लेना सरल है किन्तु उस आधिपत्य को स्थायी बनाये रखना तो लोहे के चनों पर दाँत मारना है। जान पड़ता है कि आपके महाराज को अहंकार-रूपी अजीर्ण हो गया है। वह यह भूल गये हैं कि वसुमती की पावन गोद में महाराज पृथ्वीराज जैसे वीर-शिरोमणि अब भी विद्यमान हैं।

चन्द—राजा जयचन्द का इतना और जान लेना चाहिए कि सम्राट् पृथ्वीराज के उपस्थित रहते उनका राजसूय-यज्ञ धूल में मिट्टी का घरौंदा बनाने-जैसा बच्चों का खेल ही होगा। वास्तव में राजसूय-यज्ञ तो... नहीं हो सकता, किसी तरह नहीं हो सकता।

राजदूत—जब चींटी मरने के निकट होती है तब उसके पर निकल आते हैं। जब शृगाल की मृत्यु निकट आ जाती है तब वह सिंह से उलझ पड़ता है। इसी प्रकार जब निर्बल के बुरे दिन आते हैं तो वह जान-बूझकर बलवान् से वैर

ठन लेता है। महाराज जयचन्द के बल-वैभव को तुच्छ समझने का फल महाराज को मिलेगा, मिलकर रहेगा।

ीराज—राजदूत! *(तलवार की मूठ पर हाथ जाता है)*

[राजदूत भयभीत हो उठता है]

विन्द०—*(एक-साथ)* बस महाराज, राजदूत हमारे अतिथि हैं।

[राजदूत का प्रस्थान]

ीराज—अब भी तुम को कुछ कहना है चन्द?

—अब मुझे कुछ नहीं कहना है महाराज! *(रुककर)* यह तो मैं उसी दिन जान गया था जिस दिन महाराज ने संयोगिता का चित्र मुझे दिखलाया था।

िराज—तुम फिर यहाँ मुझे समझने में भूल कर रहे हो चन्द! कन्नौज यदि मैं जाऊँगा, तो केवल राजा जयचन्द से अपने अपमान का बदला लेने के लिए।

—नहीं नहीं महाराज! अब तो संयोगिता के सती-धर्म की रक्षा का भी एक बड़ा भारी प्रश्न महाराज के सामने है।

िराज—परिहास छोड़ो। सच-सच बतलाओ चन्द, क्या हमें संयोगिता की ओर न देखना चाहिए?

—नहीं महाराज! मेरा ब्रह्म तो ऐसा ही कहता है कि अब संयोगिता को साथ लेकर ही महाराज दिल्ली लौटेंगे।

िराज—*(प्रसन्न होकर, गोविन्दराय की ओर देखकर)* सचमुच... अच्छा तो अब गोविन्दराय, कमर कसकर कन्नौज की बारात के लिए तैयार हो जाओ। *(चन्द की ओर घूमकर)* लेकिन एक शर्त है चन्द, इस बारात में दूल्हा तुम रहोगे, मैं तुम्हारे अनुचर के रूप में जाऊँगा।

—महाराज कल्पना में भी मुझे कितना गौरव देते हैं, यह बात मुझे आज स्पष्ट ज्ञात हो रही है।

िराज—कल्पना में नहीं चन्द, वास्तव में इस बार मैं इसी रूप में कन्नौज जाऊँगा।

[यवनिका गिरती है]

तृतीय दृश्य

स्थान–कन्नौज-नरेश महाराज जयचन्द का राजभवन।

समय–लगभग नौ बजे रात्रि।

[महाराज जयचन्द का रत्नजटित सिंहासन, द्वार-द्वार पर रेशम के फूलदार परदे लगे हुए हैं जो मोटी रेशमी डोरियों से दोनों ओर बँधे हुए हैं। डोरियों के अन्त में बँधे हुए रेशमी फूँदने भूमितल तक लटक रहे हैं। ऊँची-ऊँची दीवारों में विविध वर्ण और भाव के चित्र हैं। महाराज के आसन पर फूलदार मख़मल का आवरण है और उसी रंग का फूलदार रेशमी मसनद। लट्टू के आकार के दीपाधारों के कई पुञ्ज हैं, जिनके लटकन नाना प्रकार के बहुवर्ण रत्नों के हैं। भूमितल पर फ़ारस देश के सुन्दर ग़लीचे बिछे हैं। दीवारों पर यत्र-तत्र आदर्श वाक्य लिखे हुए हैं। यथा–

–ऐश्वर्य-भोग ही जीवन का परम सत्य है।

–शत्रु का विनाश अभीष्ट हो तो कुछ भी अनुचित नहीं।

–पड़ौसी राज्य की मित्रता एक प्रच्छन्न प्रवंचना है और सुदूरवर्ती राज्य की शत्रुता चिन्ता-रूपी चिता।

महाराज जयचन्द राजसभा में बैठे हुए हैं; उनके निकट महामात्य सुमन्त, कवि जगनिक तथा अन्यान्य शूर-सामन्त विराजमान हैं और राजनर्तकी कर्नाटकी का नृत्य हो रहा है। इसी समय यवनिका उठती है। कवि चन्द के साथ उसके अनुचर के रूप में पृथ्वीराज का प्रवेश होता है]

चन्द–महाराज की जय हो।

जयचन्द–आओ चन्द, बैठो। कहो तुम्हारे महाराज सानन्द तो हैं ?

चन्द–भगवान् की कृपा से बहुत आनन्दपूर्वक हैं।

जयचन्द–नानाजी ने दिल्ली का राज्य उन्हीं को सौंप दिया और तुम्हारे महाराज ने उसे चुपचाप हड़प कर लिया। यह नहीं सोचा कि जो स्थिति उनकी है, वही कन्नौज-नरेश जयचन्द की भी है। अच्छा, तुम्हीं कहो चन्द, दिल्ली के

राज्य में आधा भाग मेरा क्या नहीं है ?

[पृथ्वीराज के मुख पर प्रतिक्रिया होती है और महाराज जयचन्द उसको लक्ष्य करते हैं]

चन्द–महाराज ! अपराध क्षमा हो । दिल्ली के पहले महाराज अनंगपाल ने दिल्ली-राज्य स्वेच्छा से महाराज पृथ्वीराज को समर्पित किया है । आपका दावा उन्हीं की इच्छा पर निर्भर है । महाराज पृथ्वीराज के न्याय और धर्म पर किसी प्रकार का लांछन आप नहीं लगा सकते ।

जयचन्द–धर्म और न्याय पर लांछन लगाने की इसमें क्या बात है चन्द ! वह तो पृथ्वीराज के भाल पर कलंक के टीके की भाँति अपने-आप लगा हुआ है । मौसेरे भाई का भाग चुपचाप हड़प कर उसका उपभोग करना क्या यही आपके महाराज का न्याय और धर्म है ? आप समझते होंगे कि इससे पृथ्वीराज का गौरव बढ़ गया है । छिः-छिः....

[पृथ्वीराज पर प्रतिक्रिया : भौंहें चढ़ जाती हैं । तलवार पर हाथ जाता-जाता संकुचित होकर रुक जाता है और महाराज जयचन्द इसे लक्ष्य करते हैं]

चन्द–महाराज पृथ्वीराज के साथ आर्य अन्याय कर रहे हैं । जो राज्य उनको उत्तराधिकार में मिला है, जिसमें उनकी याचना और लिप्सा को कोई हाथ नहीं है, उसमें अपने भाग और अधिकार की कल्पना करते हुए महाराज यह भूल रहे हैं कि उनका रोष सकारण होते हुए भी स्थानान्तरित है । उपालम्भ हो सकता है तो महाराज अनंगपाल पर । महाराज पृथ्वीराज पर किसी प्रकार नहीं हो सकता, किसी प्रकार नहीं महाराज ।

[राजनर्तकी कर्नाटकी नृत्य करती-करती पृथ्वीराज के सामने आकर एकाएक सिर की साड़ी को नीचे खिसकाकर अवगुण्ठन का रूप दे देती है । महाराज जयचन्द इसको लक्ष्य करते हुए पृथ्वीराज की ओर देखते हैं । उसी क्षण चन्द नेत्र और मुख से ऐसा प्रच्छन्न निषेध-संकेत कर देते हैं कि कर्नाटकी समझकर पुनः साड़ी ऊपर खिसका कर मुह खोल देती है]

जयचन्द–*(कर्नाटकी से आश्चर्य के साथ)* यह क्या ?

कर्नाटकी–*(मुस्कराती हुई)* कविराज चन्द महाराज के बाल-सखा हैं । इसलिए पूर्व से ही उनके साथ मेरा देवर-भाभी का-सा सम्बन्ध है ।

जयचन्द– *(आश्चर्य से)* अच्छा, यह बात है ! *(चन्द की ओर घूमकर)* अच्छी बात है चन्द ! मनुष्य अपने कर्म का फल इसी जीवन में पा लेता है। महाराज अनंगपाल हों अथवा उनके पक्षपात से लाभ उठाने वाले पृथ्वीराज हों, मेरे साथ जो अन्याय हुआ है, उसका परिणाम उनको भोगना ही पड़ेगा। कोई शक्ति उस परिणाम से उन्हें बचा नहीं सकेगी। इसको तुम इन्हीं आँखों से देखोगे चन्द।

[महाराज पृथ्वीराज बहुत गम्भीर हो जाते हैं]

चन्द–महाराज चाहे जो समझें और चाहे जो कह डालें–पक्ष और विपक्ष मन के खेल होते हैं। कर्म का फल उसी को मिलता है जो उसको करता है। कर्त्ता कारण और दोषी होता है। भगवान् की इस अचल और अनन्त सृष्टि में दुर्निवार कर्मभोग भोगना उसी को पड़ता है, दूसरे को नहीं।

जयचन्द– *(मुस्कराते हैं* अच्छा चन्द, ये विवाद तो कभी शान्त न होंगे, पर इस राज्य-सभा में तुम्हारा यह आगमन मुझे सदा स्मरण रहेगा। मैं कभी यह नहीं भूल सकूंगा कि कविराज ने अपना पक्ष मेरे सामने रखने में किसी प्रकार का संकोच नहीं किया। तुम्हारे इस वीरोचित साहस की मैं प्रशंसा करता हूँ। तुमने वास्तव में कवि-परम्परा का मान बढ़ाया है, उसका भाल ऊँचा किया है। अब कविराज विश्राम करें। जो कुछ उपहार और भेंट देना मैंने निश्चित किया है वह आपके निवास-स्थान पर पहुंच जायेगा।

[चन्द के साथ पृथ्वीराज का प्रस्थान। यवनिका गिरती है]

चतुर्थ दृश्य

स्थान—संयोगिता का शयनकक्ष।

समय—रात्रि के लगभग नौ बजे।

[चाँदी के पायों का श्वेत पर्यंक। रेशम की मसहरी, जिसके लट्ठों पर स्वर्णपत्र चढ़े हैं। पलंग के नीचे चौकी, जिसमें मोरपंखी मख़मल का आवरण है। उसी पर राजकुमारी की मख़मली हरी-हरी जूतियाँ, जिनके किनारों पर ज़रदोज़ी का शृंगार है, पड़ी हैं। सुनयना अंगुलियाँ चटकाती राजकुमारी के पैताने बैठी है। रोहिणी सिरहाने बैठी सिर दबा रही है। ऊषा व्यजन डुला रही है और सरोजिनी भी अंगुलियाँ चटका रही है। मणियों और रत्नों के लटकनों के दीपाधार जल रहे हैं। गंगा के उस पार वंशी की ध्वनि गूँजती हुई सुनाई पड़ रही है। कभी बादल का कौंधा लपकता और बिजली चमक उठती है।

एकाएक संयोगिता करवट बदलने की चेष्टा करती है और यवनिका उठती है]

सुनयना—राजकुमारी! राजकुमारी! *(आतुरता से)* बड़ा सुखद समाचार है।

संयोगिता—क्या सुनयना! कौन-सा समाचार है ?

सुनयना—महाकवि चन्द सौ सामन्त और सहस्रों सैनिकों के साथ कन्नौज पधारे हैं। राजकुमारी जी! ऐसा तो हो नहीं सकता कि वह महाराज पृथ्वीराज का कोई समाचार न लाये हों।

संयोगिता—कौन जाने क्या समाचार लाये हैं सुनयना! *(वक्ष का जल्दी-जल्दी उठना-गिरना)* मेरा जी बहुत घबरा रहा है। तुझे ज्ञात नही कि पिता जी उनके प्रति कैसी दुर्भावना रखते हैं। *(आँखों में आँसू आ जाते हैं)*

सुनयना—कुछ भी हो राजकुमारी, विवाह की बात ही दूसरी होती है और फिर वह विवाह, जो स्वयंवर की रीति से हो। उसमें तो कन्या की रुचि, उसकी भावना मान्य करनी पड़ती है। राजकुमारी चिन्ता न करें, भगवान् के बड़े-बड़े हाथ हैं; वह सबकी कामना पूरी करते हैं।

संयोगिता– *(आँसू गिराती हुई)* मैं पैदा ही नहीं हुई होती सुनयना, तो कितना अच्छा होता ! इधर पिताजी मेरे कारण दुःखी हैं, उधर दिल्ली के महाराज । जिन घड़ियों में लोग आनन्द-मंगल मनाते हैं, माता-पिता, बन्धु-बान्धवों, इष्ट-मित्रों के मनोविनोद की सीमा नहीं रहती, उन्हीं घड़ियों में मेरे यहाँ युद्ध होगा, रक्त की नदियाँ बहेंगी । मैं कितनी अभागिन हूँ सुनयना ! *(सिसकियाँ भरने लगती है)*

[राजमहल के द्वार पर सैन्य-वाद्य बजने लगते हैं । संयोगिता और सुनयना उसका स्वर सुनती हैं । सुनयना के मुख पर प्रसन्नता के भाव झलकते हैं पर संयोगिता के ओष्ठ हिलते हैं और आँखें सजल हो उठती हैं]

सुनयना–ऐसा कुछ न होगा राजकुमारी ! देखो, राजभवन के सामने से जो स्वर आ रहा है वह रण का नहीं, युद्ध का नहीं, राजकवि चन्द के स्वागत का है । और कौन नहीं जानता कि राजकवि चन्द महाराज पृथ्वीराज के सबसे बड़े मित्र हैं । अवश्य ही वह कोई ऐसा प्रस्ताव लेकर आये हैं, जो राजकुमारी की सारी चिन्ताओं को यों *(चुटकी बजाकर)* दूर कर देंगे ।

संयोगिता– *(एक निःश्वास लेकर)* तू जानती नहीं सुनयना, पिता जी सब कुछ कर सकते हैं । वे कवि चन्द का अपमान भी कर सकते हैं ।

सुनयना–नहीं, नहीं, राजकुमारी, महाराज इतने असभ्य नहीं हैं । वह ऐसा नहीं कर सकते–कभी नहीं कर सकते राजकुमारी ।

[एक पग-ध्वनि होती है और दौड़ती हुई वीणा आ पहुँचती है]

वीणा–राजकुमारी ! अब क्या होगा ? समाचार बड़ा चिन्ताजनक है ।

[इतना ही सुनकर राजकुमारी संयोगिता अधिक वेग से सिसकियाँ लेकर रो पड़ती है]

सुनयना–क्या है वीणा ? कैसा समाचार है ?

वीणा–महाकवि चन्द के साथ उनके अनुचर के रूप में स्वयं महाराज पृथ्वीराज पधारे थे । राजनर्तकी कर्नाटकी दरबार में ज्योंही उनके सामने पहुँची त्योंही उसने अपने मुख पर अवगुण्ठन डाल दिया और राजकुमारी, महाराज जानते ही हैं कि कर्नाटकी तो अकेले महाराज पृथ्वीराज से ही परदा करती

थी।

सुनयना–अच्छा, फिर क्या हुआ वीणा ?

वीणा–फिर, महाकवि चन्द ने कुछ ऐसा संकेत कर दिया कि कर्नाटकी ने झट अपना मुँह खोल दिया। इस पर महाराज ने जब पूछा कि यह तूने क्या किया–तब उसने हँसते हुए उत्तर दिया कि चन्द मेरे देवर के समान हैं। उनके साथ मेरी छेड़छाड़ चलती ही रहती है !

सुनयना–तब तो फिर सब ठीक हो गया। अब इसमें चिन्ता की क्या बात रह गई ! मान लो कि हमारे महाराज को सन्देह हुआ पर उसका निवारण भी तो तुरन्त हो गया।

वीणा–निवारण ही तो नहीं हुआ सुनयना। महाराज पृथ्वीराज का व्यक्तित्व आकाश में सूर्य के समान प्रकाशमान है। वह छिपे नहीं रह सकते। वह छिपाये भी नहीं जा सकते। हाँ, यह अच्छा हुआ कि वह कुछ बोले नहीं। अगर कहीं वह बोल उठते तो राजसभा में आज ही विग्रह हो उठता। राजकवि के स्वागत के स्थान पर युद्ध का स्वागत होता।

संयोगिता–कुछ भी हो वीणा, युद्ध होकर रहेगा। उसे कोई रोक नहीं सकता। दिल्ली के महाराज अपने अपमान की प्रतिहिंसा में जल रहे हैं। उसका बदला लिये बिना वह कन्नौज से लौट नहीं सकते। ऐसे समय मुझे मृत्यु ही सहारा दे सकती है। *(मस्तक से हाथ लगाकर)* आ जाओ माँ, आ जाओ। *(आसन पर ही मूर्छित होकर गिर पड़ती है)*

[संयोगिता मूर्छित अवस्था में पड़ी हुई है। वीणा, सुनयना, सूर्यमुखी, जगदम्बा, रोहिणी, चम्पा, अन्नदा, मोहिनी, सरोजिनी, चाँदनी, वत्सला, उषा, मृगनयनी, सुखदा, उर्वशी, शकुन्तला, वेणी, तोरनदेवी, सुभद्रा, मुक्तकुन्तला, मन्दहासिनी, चन्द्रभागा, तिलोत्तमा आदि सखियाँ और परिचारिकाएँ झट आ-आकर उसे घेर लेती हैं। कोई पंखा झलने लगती है, कोई गुलाब-जल छिड़कने लगती है, कोई पैर के तलवों में मखमल की गोलाकार छोटी गद्दी धीरे-धीरे घिसने लगती है और कोई कान में चुपके से कुछ कह उठती है। वीणा एक वीणा लेकर बजाने लगती है। मन्द-मन्द मधुर ध्वनियाँ उठती हैं और वीणा गा उठती है–]

आई मिलन की बेला, तो चन्दा रूठ गई।
नयनों की पुतली में ऐसे समाये,
कि अधर बावरे मिल नहिं पाये।
सपनों की बांहों में आने को धाये,
तो डोरी टूट गई, दुविधा की डोरी टूट गई।
आई मिलन की बेला, तो चन्दा रूठ गई।

[संयोगिता वीणा के इस गीत को सुनती-सुनती एकाएक आँखें खोलकर उठ बैठती है]

प्रतिभा–*(दौड़ती हुई आकर)* राजकुमारी! राजकुमारी! जान पड़ता है, महाराज पृथ्वीराज एक घोड़े पर सवार होकर भवन के इधर-उधर टहल रहे हैं।

रोहिणी–महाराज पृथ्वीराज टहल रहे हैं! तो आओ मंगल-गीत गाओ। मगर पहले झट-से उन्हें अन्दर ले आओ। आचार्य को भी बुला लो, चुपके से सुभद्रा। ऐसा संयोग फिर कब आयेगा!

[वीणा, सुनयना आदि ग्यारह सखियों का एक-साथ प्रस्थान]

सुभद्रा–हाँ-हाँ, ठीक तो है। हमारे देश में ऐसे समय गन्धर्व-विवाह सदा से होते आये हैं।

संयोगिता–नहीं-नहीं, पिताजी की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं हो सकता, कुछ नहीं हो सकता।... *(मन्द स्वर में)* लेकिन...फिर मेरा क्या होगा? मृत्यु। माँ! तुम नहीं आओगी? संसार सदा तुम्हारी उपेक्षा करता रहता है। लेकिन मैं...मैं तो तुम्हें माँ कहकर पुकार रही हूँ! आओ, आ जाओ माँ।

सुभद्रा–ऐसा मत कहें राजकुमारी, ऐसा मत कहें। विवाह, केवल विवाह ही एक ऐसा संस्कार है जो माता-पिता, समाज, परम्परा आदि किसी का भी नियन्त्रण नहीं मानता। यह आदिशक्ति है। इस पर केवल मानवी हृदय का ही अधिकार होता है। इस विषय में राजकुमारी को किसी का मुँह ताकने की आवश्यकता नहीं।

रोहिणी–बड़े दुःख की बात है कि राजकुमारी मिलन की इन पावन घड़ियों में

भी दुविधा में पड़ी हैं। वह संसार से डरती हैं। समाज से डरती हैं, माता-पिता से डरती हैं। वह यह क्यों नहीं सोचतीं कि एक बार मिलन हो जाय, केवल एक बार तो यह जीवन सार्थक हो जाता है—कृतार्थ हो जाता है। राजकुमारी! उसके बाद....।

सुभद्रा– *(बात को बीच ही से ग्रहण कर)* उसके बाद चाहे मृत्यु ही उठा ले जाय, तो भी कोई चिन्ता नहीं। एक बार जीवन पाकर उसका पूरा-पूरा मोल पाये बिना हमारे लिए गति कहाँ है? मिलन से मुँह मोड़ना तो वैसा ही है जैसा आत्मघात।

रोहिणी–और आत्मघात रौरव नरक का द्वार है राजकुमारी! धिक्कार है उस मनुष्य को, जो जीवन का पूरा-पूरा उपभोग किये बिना ऐसा पाप करता है! राजकुमारी प्रणय-मिलन से इन्कार नहीं कर सकतीं। एक मिलन ही तो है जिससे विधाता की इस रचना पर विश्वास होता है, श्रद्धा हो आती है।

सुभद्रा–अब वह शुभ घड़ी बहुत निकट है रोहिणी! अरी तोरण! तू आचार्यजी को जल्दी से बुला तो ला और सुखदा! तू थाल में सारी मांगलिक सामग्री सजाकर जल्दी से ले तो आ।

तोरण–सामग्री? सामग्री तो पहले से ही तैयार है। *(प्रस्थान)*

रोहिणी–जो कुछ करना है जल्दी करो। महाराज पृथ्वीराज से भी कह दो कि वह तत्पर रहें। *(संयोगिता से)* चलें, राजकुमारी, चलें, मैं शृंगार कर दूं।

[संयोगिता उठती है और यवनिका गिरती है]

पञ्चम दृश्य

स्थान–संयोगिता का शयन-कक्ष।

समय–रात्रि के एक बजे।

[दृश्य–पूर्ववत्]

पृथ्वीराज–संयोग की रानी, यह ऐसा क्षण है कि तुमको अपने समक्ष पाकर भी मैं वास्तविक सुख का अनुभव नहीं कर पा रहा हूँ। मेरे प्राण विकल हैं संयोगिता! कितने विकल हैं, तुम नहीं जान सकोगी।

संयोगिता–मैं जानती हूँ प्राणों के राजा! मैं इतना जानती हूँ कि महाराज के मन पर क्या बीत रही है। आः! जिन घड़ियों में लोग अपनी सन्तान की मंगल-कामना के नाम पर सारी धन-सम्पत्ति, सारा ऐश्वर्य लुटा देते हैं उन्हीं घड़ियों में मेरे पिता...मेरे पिता महाराज का अमंगल सोच रहे होंगे। *(सिसकियाँ भरती है)*

पृथ्वीराज–फिर भी *(एक निःश्वास के साथ)* फिर भी संयोगिता, हमारे सामने कर्तव्य-पालन का कैसा महान् अवसर है। ऐसे ही अवसरों पर तो वीरांगनाओं के धैर्य की परीक्षा होती है।

संयोगिता–धैर्य की परीक्षा और अधिक न लें महाराज। एक-एक पल, एक-एक घड़ी, एक-एक दिन, एक-एक साँस तक मैंने धैर्य को इन मुट्ठियों में कसकर बाँध रखा है प्राणनाथ! नहीं तो महाराज...महाराज का यह मुखारविन्द मुझे देखने को मिलता? *(कहती-कहती महाराज के वक्ष में मुंह छिपा लेती है)*

पृथ्वीराज–सुन चुके हैं संयोगिता, मेरे ये कान तुम्हारी इस तपस्या की कहानी! *(मुस्कराते हुए)* एक नहीं अनेक मुखों से सुन चुके हैं। संसार के कितने प्राणियों को ऐसा पावन और दुर्लभ संयोग मिल पाता है संयोगिता! सच पूछो तो मैं तुम्हारे पास उसी साधना के बल से खिंचा

चला आया हूँ। नहीं तो...नहीं तो यह संसार कितना निर्मम है, सृष्टि कितनी निर्दय है, यह तुम जानती ही हो।

संयोगिता–सृष्टि की निर्दयता की बात क्या कहूँ महाप्राण! जिन घड़ियों में महाराज अश्वारोही के रूप में इधर की ओर प्रस्थान कर रहे थे उन्हीं घड़ियों में हमारे खोखुन्दपुर उपनगर को महाराज की सेना लूट रही थी। *(आँखों में आँसू आ जाते हैं)* और मेरे काका बालुकाराय को वीरगति देने का श्रेय भी *(आँसू पोंछती हुई)* उन्हीं घड़ियों को है।

पृथ्वीराज–*(मुस्कराते हुए)* घड़ियों के श्रेय की कहानी सदा अद्भुत होती है राजकुमारी! कभी-कभी मैं अपने सौभाग्य की कल्पना करके स्तब्ध हो उठता हूँ। एक के बाद एक, केवल प्रेम के आह्वान ने, केवल कर्तव्य की पुकार ने नई-नई प्रणय-घड़ियाँ असीम सौख्य के रूप में मुझे दे डाली हैं। विधाता की यह कैसी अनोखी लीला है। उसका कैसा अनोखा प्यार है मेरे लिए!

संयोगिता–*(दाएँ पार्श्व की ओर देखती हुई)* कहाँ गई सुनयना? सुनयना! *(कुछ उच्च स्वर से)* सुनयना!

सुनयना–*(निकट आते हुए)* आई, आ गई राजनन्दिनी। आदेश?

संयोगिता–महाराज मेरे कहने से *(अधरों के विकास के साथ)* तो कुछ खा नहीं रहे सुनयना।

सुनयना–महाराज, ऐसी पवित्र मंगल-बेला में आपके बिना कुछ ग्रहण किये हमें कैसे सन्तोष होगा? अपनी क्षुधा के लिए न सही, राजनन्दिनी के लिए ही कुछ ग्रहण करें महाराज, कुछ-न-कुछ अवश्य ग्रहण करें।

पृथ्वीराज–नहीं, नहीं सुनयना! अपने उन दिवंगत सैनिकों की स्मृति में जिन्होंने केवल मेरी मंगल-कामना के हेतु हँसते-हँसते प्राणोत्सर्ग किया है, मैं आज कुछ भी ग्रहण करना नहीं चाहता।

सुनयना–फिर भी, फिर भी, पाणिग्रहण के पश्चात् मुँह मीठा करने की प्रथा है महाराज! ऐसी प्रथा, जो सारा जीवन सानन्द व्यतीत करने का शुभारम्भ करती है। कुछ-न-कुछ तो ग्रहण करना ही होता है महाराज।

संयोगिता–हाँ, महाप्राण ! कुछ-न-कुछ ग्रहण करना ही होता है।

सुनयना– *(मुस्कराती हुई)* फिर महाराज, और भी तो एक बात है। इस शुभ घड़ी में यदि महाराज कुछ ग्रहण करेंगे तो राजनन्दिनी का बन्द इन्दीवर-मुख भी खुल जायगा महाराज ! क्योंकि इस समय मुँह जुठारना एकाकी नहीं, पारस्परिक होता है महाराज, पारस्परिक। लीजिए मैं जाती हूँ। *(प्रस्थान)*

[पृथ्वीराज सामने रखे हुए कंचन-थाल में से मिष्ठान्न का एक टुकड़ा पहले अपने मुख में डालते-डालते संयोगिता की ओर बढ़ा देते हैं और संयोगिता सस्मित होकर एक ग्रास उठाती हुई पृथ्वीराज के मुंह की ओर बढ़ा देती है]

पृथ्वीराज– *(मुंह जुठारते हुए)* बारम्बार मुझे यही स्मरण हो रहा है संयोगिता, मृत्यु के मुख में जाते हुए हमारे न जाने कितने सैनिक 'पानी ! पानी !' की पुकार कर रहे होंगे। कौन जाने उनके निकट कोई है भी या नहीं। एक हम हैं जो उनका दुःख न देख कर अपना–केवल अपना–सुख देख रहे हैं। *(एकाएक भावावेश में होकर)* नहीं, नहीं, संयोगिता, अब मैं जाऊँगा, मुझे इस समय उन आहत वा मरणासन्न वीर सैनिकों और सामन्तों का चीत्कार सुनाई पड़ रहा है जो पृथ्वीराज के लिए इस पृथ्वी से सदा के लिए विदा ले रहे हैं।

संयोगिता– *(उठती हुई)* नहीं महाप्राण, नहीं। इतनी रात को मुझे इस अवस्था में छोड़कर महाराज कहीं नहीं जायेंगे।

पृथ्वीराज– *(सोचता हुआ अस्थिर होकर एक निःश्वास के साथ)* अच्छा, संयोगिता, नहीं जाऊँगा। कर्तव्य केवल एक ही ओर नहीं अपितु चारों ओर देखता है। मैं भी ऐसा ही करूँगा। लो, तुम भी थोड़ा ग्रहण करो। संसार भले ही मुझे उपालम्भ देता रहे किन्तु...किन्तु जिसके लिए यह महायज्ञ हुआ है, उसको मैं ऐसा अवसर नहीं दूंगा। संयोगिता सदा संयोग की रानी बनकर रहेगी।

[यवनिका गिरती है]

षष्ठ दृश्य

स्थान—कन्नौज में महाराज का शिविर।

समय—प्रातः काल लगभग पाँच बजे।

[काका कान्ह, जैतराव परमार, चामुण्डराय, चन्दपुण्डीर, गोविन्दराय, राजगुरु, राजपुरोहित आदि बैठे हैं। भूमितल पर नीचे दरी, उसके ऊपर गद्दे, गद्दों पर मख़मल के ग़लीचे बिछे हैं। यत्र-तत्र मसनदें और गाव-तकिये रखे हुए हैं। चारों ओर सशस्त्र प्रहरी घूम रहे हैं। सामन्तगण बैठे परामर्श कर रहे हैं। उनके सामने प्रातः कालीन जलपान-सामग्री रखी हुई है। कोई जलपान कर रहा है और कोई हुक्का गुड़गुड़ा रहा है। इतने में महाराज पृथ्वीराज आ जाते हैं—और यवनिका उठती है]

पृथ्वीराज— *(काका कान्ह से)* काका जी, जिस बात की आशंका थी वह होकर रही। कन्नौज-नरेश जयचन्द युद्ध का सारी तैयारी कर चुके हैं। घड़ियाँ टल रही हैं। किसी भी क्षण हमें युद्ध का निमन्त्रण मिल सकता है।

काका कान्ह—युद्ध का निमन्त्रण तो हमें दिल्ली में ही मिल चुका था महाराज। अब तक प्रारम्भ नहीं हुआ, इसका कारण यह है कि महाराज कवि चन्द के सहायक के रूप में आये हैं, सम्राट् पृथ्वीराज के रूप में नहीं।

चन्द— *(काका कान्ह से)* परन्तु बात छिप नहीं सकी, काका जी ! जैसे अंशुमाली गगन में छिप नहीं पाता, वैसे ही महाराज छिपाये नहीं जा सकते। रात को कन्नौज के राजकवि जगनिक महाराज जयचन्द की ओर से नाना मणि-माणिक्य और उपहार भेंट करने आये थे। उस समय जो वार्तालाप हुआ उससे तो यही ध्वनित होता था कि हम सकुशल यहाँ से लौट न पाएँगे।

पृथ्वीराज—राजा की कुशलता तो युद्ध-क्षेत्र में ही सन्तोष की साँस लेती है पर क्या जगनिक ने कोई ऐसी बात कही थी जो हमारे सम्मान के विरुद्ध थी।

चन्द—निश्चय ही वह महाराज के सम्मान के विरुद्ध थी।

पृथ्वीराज–क्या कहा था उन्होंने ? उन्होंने क्या कहा था ?

चन्द–उन्होने कहा था–हमने पृथ्वीराज को स्वयंवर में उचित ही स्थान दिया है। वह इसी प्रतिष्ठा के योग्य है। यदि उन्हें अपने गौरव का ज्ञान होता, अपनी वीरता का अभिमान होता तो वह हमारी राजसभा में कवि के अनुचर बनकर कभी न आते।

पृथ्वीराज– *(आवेश में)* तो जयचन्द एक तरह से हमें युद्ध का निमन्त्रण दे चुके। *(काका कान्ह की ओर देखकर)* काका जी ! युद्ध के समय तो आपकी आँखों की स्वर्णपट्टी खुल जानी चाहिए। जो आँखें शत्रुओं का कलेजा चीर देने के लिए बनी हैं उनको बन्दी बनाकर रखना अब हमको सहन नहीं होता। *(महामात्य परमार की ओर देखकर)* महामात्य ! युद्ध के लिए अब हमको तैयार हो जाना चाहिए !

काका कान्ह– *(आँखों पर बँधी हुई स्वर्णपट्टी उतारते हुए)* वाह ! *(इधर-उधर आश्चर्य से देखते हुए)* अरे, महाराज के हाथ में तो कंगन बँधा है। लेकिन बहू को कहाँ छोड़ आये महाराज ?

पृथ्वीराज– *(काका कान्ह के पैर छूकर)* काका जी ! आपके आशीर्वाद से जयचन्द की राजकुमारी का सब संकट दूर हो गया।

काका कान्ह– *(महाराज के सिर पर हाथ रखकर)* सुखी रहो और सदा विजय प्राप्त करो पृथ्वीराज !

चन्द–अब काका जी, अगर महाराज संयोगिता को लेकर कुछ सैनिकों के साथ दिल्ली लौट जायें तो हमारा उद्देश्य निर्विघ्न पूरा हो जायगा।

काका कान्ह–हाँ, हाँ, मैं भी यही सोचता हूँ।

पृथ्वीराज–किन्तु मैं इसको उचित नहीं समझता। हमारी प्रतिष्ठा के भाजन, हमारे प्रेम के अधिकारी, हमारे स्नेह के आधार गुरुजन, मित्र और वीर सामन्तगण यहाँ संकट मे पड़े और मैं संसार का सुख-भोग करूँ। इसे मैं कदापि उचित नहीं समझता। यों भी अनेक विवाह करने के कारण संसार की दृष्टि में कोई उच्च आदर्श मैं स्थापित नहीं कर सका। अब इस परिस्थिति से भी मैं अनुचित लाभ उठाऊँ, यह मेरे लिए कितनी लज्जा की बात होगी।

पृथ्वीराज अपने प्राण दे सकता है परन्तु अपने किसी स्वार्थ के लिए राज्याधिकारियों और सामन्तों को संकट में नहीं डाल सकता—किसी प्रकार नहीं डाल सकता !

काका कान्ह—महाराज चिन्ता न करें, हमारे जितने भी सामन्त उपस्थित हैं वे अपने प्राणों की बलि देकर भी महाराज की प्रतिष्ठा बचायेंगे।

पृथ्वीराज—माना कि वे अवश्य बचायेंगे। माना कि वे अपने कर्तव्य का पालन अवश्य करेंगे। पर पृथ्वीराज भी अपना कर्तव्य जानता है। जीवन की अन्तिम साँस तक वह किसी को यह सोचने-कहने का भी अवसर नहीं देना चाहता कि एक नारी के मोहपाश में पड़कर उसने अपनी प्रजा को संकट में डाल दिया।

चन्द—महाराज धन्य हैं।

पृथ्वीराज—महामात्य ! अब देर न करें। युद्ध की दुन्दुभि अब अपनी ओर से बजानी पड़ेगी। एक ओर संयोगिता को साथ लेकर मैं आगे बढ़ूंगा, दूसरी ओर हमारी सेना अभिमानी जयचन्द की राजधानी कन्नौज का विध्वंस करेगी। उनके महामात्य सुमन्त को आज मैं यह दिखाना चाहता हूँ कि अपने मौसेरे बन्धु के प्रति द्वेष-भावना रखने और स्वयंवर में उसका अपमान करने का क्या परिणाम होता है ! यह आत्मदाह अब शान्त न होगा। आज या तो संयोगिता हमारे साथ जायगी, या पृथ्वीराज ही इस संसार से उठ जायगा।

[महामात्य का प्रस्थान]

काका कान्ह—ऐसा न कहें महाराज ! मैं फिर किस दिन के लिए हूँ ? यह तो हो सकता है कि काका कान्ह को कल का सवेरा देखने को न मिले किन्तु महाराज पृथ्वीराज नई बहुरानी के साथ अपने घोड़े पर सदा आगे ही दिखाई देंगे। *(आकाश की ओर देखते हुए)* महाकाल, तुम मेरी घोषणा सुन रहे हो ! और नियति, तू भी मेरी ओर देख ले, देख ले कि मैं अपना वचन कैसे पूर्ण करता हूँ !

[महाराज पृथ्वीराज, महाकवि चन्द तथा अन्य सामन्तगण काका कान्ह की ओर देखते हैं और यवनिका गिरती है]

सप्तम दृश्य

स्थान—सौरों : महाराज पृथ्वीराज का शिविर।

समय—लगभग नौ बजे रात्रि।

[एक विशाल तम्बू के अन्दर महाराज मसनद के सहारे लेटे हुए करवट बदल रहे हैं। जयपत्ती उनके पास बैठी पैर दबा रही है। धनुष-बाण और तलवार दाहिनी ओर टंगे हुए हैं। बाईं ओर जो परदा पड़ा है उसके भीतर से संयोगिता प्रवेश करती है। यवनिका उठती है]

संयोगिता—महाराज ! महाराज ! *(पृथ्वीराज कोई उत्तर नहीं देते, तब जयपत्ती की ओर देखकर)* जयपत्ती ! तू जा, सो जा।

[जयपत्ती का प्रस्थान]

संयोगिता—बात क्या है ? महाप्राण बोलते क्यों नहीं ? *(झुककर देखती है)*

पृथ्वीराज—अब मुझे महाप्राण मत कहो संयोगिता ! क्षुद्रप्राण कहो, क्षुद्रप्राण।

संयोगिता—*(आश्चर्य से)* ऐं, क्षुद्रप्राण ! महाराज क्या कह रहे हैं ? आर्य आज इतने दुःखी क्यों हैं ? हम सकुशल कन्नौज-राज्य पार करके अपने राज्य में आ गये हैं। अब तो चिन्ता का कोई कारण नहीं है महाराज !

पृथ्वीराज—*(उठकर)* चिन्ता का नहीं, संयोग की रानी ! वियोग का कारण है, विनाश का कारण है। *(एक निःश्वास लेकर)* काकाजी का बलिदान, हमारे एक-से-एक बढ़कर वीर सामन्तों की आत्माहुतियाँ, उनकी विधवा नारियों के बहते हुए आँसू, राज्य-भर में चीत्कार की ध्वनियाँ पृथ्वीराज के अधःपतन की वे कहानियाँ कह रही हैं संयोगिता, जिसे भारत की भावी सन्तान कभी क्षमा नहीं करेंगी ! *(एकाएक फिर मसनद पर गिर पड़ते हैं)*

संयोगिता—फिर भी महाराज के दुःखी होने का कोई कारण नहीं है। वे शत्रुदेश की राजधानी में बलपूर्वक घुसकर लड़ते-लड़ते विजय-पताका फहराते हुए यहाँ तक बढ़ आये हैं।

।राज– *(नि:श्वास लेकर)* विजय-पताका! इसको तुम विजय-पताका कहती हो संयोगिता! हमारे सौ वीर सामन्तो में से एक-दो नहीं, दस-बीस नहीं, चौंसठ सामन्त समाप्त करा देने वाले नर-संहार के रक्त को बूंद-बूंद टपकाती हुई ये पताकाएँ विजय की पताकाएँ हैं? छी: ! यह विजय नहीं हमारी प्रत्यक्ष पराजय है—पराजय, असफलता, अध:पतन।

[चन्द का प्रवेश। आते-आते सहसा महाराज पृथ्वीराज को देखते रहते हैं और तभी संयोगिता प्रस्थान करती है]

ीराज– *(स्वगत)* रह-रहकर काका जी की वाणी मेरे कानों में गूंजने लगती है। मैंने जब कहा–'आज या तो संयोगिता हमारे साथ जायगी या पृथ्वीराज ही इस संसार से उठ जायगा।' तब काका जी ने कितने जोश के साथ कहा था, कितने भावावेश में कहा था–'ऐसा न कहें महाराज। फिर मैं किस दिन के लिये हूँ? यह हो सकता है कि काका कान्ह को कल का सवेरा देखने को न मिले किन्तु महाराज पृथ्वीराज अपनी नई बहुरानी के साथ अपने घोड़े पर सदा आगे ही दिखाई देंगे।' *(आँखें खोलकर आँसू टपकाते हुए)* नई बहूरानी के इतने शुभचिन्तक। काका, पृथ्वीराज तुम्हारे इस बलिदान से कभी उऋण न होगा।

द–काका जी का यह बलिदान चिरस्मणीय रहेगा महाराज।

वीराज– *(चन्द की ओर देखकर)* ओह, चन्द! आओ बैठो। याद है तुमको, काका जी ने इस घोषणा के समय और क्या कहा था? उनके शब्द थे–'महाकाल, तुम भी मेरी इस घोषणा को सुन लो! और नियति, तू भी मेरी ओर देख ले। देख लेना कि मैं भी अपना वचन कैसे पूर्ण करता हूँ!' *(नि:श्वास लेकर)* काका जी अपना वचन पूर्ण करके प्रस्थान कर गये लेकिन पृथ्वीराज दिये हुए वचनों में से कोई भी पूर्ण न कर सका। भविष्य के आँगन में मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है चन्द, कि मेरा यह जीवन युद्ध करते-करते कभी पूर्ण न होगा। अपूर्ण ही रहकर यह अतीत के अगाध गह्वर में समा जायगा।

न्द–महाराज इतने दु:खी और निराश कभी नहीं दीख पड़े।

थ्वीराज–इतना संहार भी पहले कभी नहीं हुआ था चन्द! मैंने इतना नर-रक्त

बहाया है, केवल इन राजकुमारियों के साथ विवाह करने के उपलक्ष में। मेरी अन्तरात्मा मुझे धिक्कार रही है। मुझे स्पष्ट जान पड़ता है कि इन हिंसक हाथों ने पीड़ित मानवता का अपमान किया है, घोर अपमान किया है।

चन्द—ऐसा न कहें महाराज! आर्य ने पीड़ित मानवता का अपमान नहीं, वास्तव में सम्मान किया है। जब-जब उन्होंने किसी राजनन्दिनी की करुण पुकार सुनी है तब-तब उन्होंने आगे बढ़ कर उसकी रक्षा ही की है, लाज ही रखी है।

पृथ्वीराज— *(शुष्क हास्य के साथ)* लाज रखी है! यह कवि नहीं, जीवन की सच्ची समीक्षा का अधिष्ठाता कलाकार नहीं, पृथ्वीराज का मित्र चन्द बोल रहा है। राजनन्दिनियों की करुण पुकार सुनने वाले महाराज ने उन विधवा नारियों का चीत्कार नहीं सुना, जिनके जीवनाधार इन युद्धों में सदा के लिए सो गये हैं। मुझे झूठ मूठ बहलाने की चेष्टा मत करो चन्द! पृथ्वीराज इतना तो समझता ही है।

चन्द— *(संकुचित होकर)* महाराज इस समय बहुत अधीर हैं। यद्यपि अपने महान् उत्तरदायित्व और कर्तव्य के नाते उनकी यह वेदना उनके गौरव के सर्वथा अनुरूप है तदपि महाराज जानते हैं कि वीरों की परीक्षा तो संकट-काल में ही होती है।

[महामात्य जैतराव परमार का प्रवेश]

जैतराव परमार—महाराज की जय हो।

पृथ्वीराज—आओ महामात्य!

जैतराव परमार—मैं जानता था कि आज महाराज बहुत दुःखी होंगे और वही मैंने प्रत्यक्ष देख लिया। किन्तु महाराज को यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि महाराज जयचन्द ने सन्धि का प्रस्ताव भेजा है। उन्होंने सम्राट् पृथ्वीराज को अपना दामाद स्वीकार कर लिया है। जो सेना कल प्रातःकाल होते-होते पुनः नर-संहार में संलग्न हो जाती, वह अब लौटी हुई बारात के रूप में गाजे-बाजे के साथ दिल्ली की ओर प्रस्थान करेगी।

पृथ्वीराज– *(उठ बैठते हैं)* सुन रहे हो चन्द ! यह है जीवन। इसको जीवन कहते हैं। *(आँखों में आँसू भरकर)* जब हम अपना सर्वस्व समाप्त कर चुके हैं तब हमको सफलता का संवाद मिलता है। जब हमारे हाथ कट जाते हैं, तब सफलता की छाया हमारे निकट आती है। जब हमारी सम्पूर्ण शक्ति लुट जाती है, तब उसकी गोद हमें शरण देती है। विजय, तुम कितनी निर्मम हो ! *(आँसू गिरने लगते हैं।)*

चन्द–बस-बस, महाराज, बहुत हो चुका। विजय का मंगल-घोष करने वाली इन पवित्र घड़ियों को विषाद और दु:ख से धूमिल करने की आवश्यकता नहीं।

जैतराव परमार–फिर इस विजय के उपलक्ष में और नई रानी संयोगिता के मनोविनोद के लिए इस समय कोई नृत्य-संगीत का आयोजन तो होना ही चाहिए।

चन्द–अवश्य होना चाहिए। सुख, सफलता और विजय के एक-एक क्षण को मैं पीड़ा के युग-युग, कल्प-कल्प से भी कई गुना श्रेष्ठ मानता हूँ महाराज।

पृथ्वीराज–नहीं चन्द, मैं तुम्हारी यह बात नहीं मानूंगा। एक दु:ख ही तो है, जिसमें सुख का पारिजात भी डूब जाता है।

[यवनिका गिरती है]

अष्टम दृश्य

स्थान—महाराज पृथ्वीराज का जन-सम्पर्क कक्ष।

समय—प्रातः काल लगभग आठ बजे।

[दृश्य—पूर्ववत्]

पृथ्वीराज—*(मसनद से सिर उठाते हुए)* चन्द, आओ बैठो।

चन्द—आज महाराज फिर कुछ उदास-उदास जान पड़ते हैं!

पृथ्वीराज—उदासीनता की बात मत पूछो चन्द! मुझे ऐसा जान पड़ता है कि अँधेरा होने में अब अधिक देर नहीं है। थोड़ी देर में ही हमारी सारी कामनाएँ सदा के लिए सो जायेंगी। मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि महाकाल हमारे जीवन पर हँस रहा है। *(एक निःश्वास लेकर)* कितना अच्छा होता यदि हमने नाना जी को दिल्ली का राज्य लौटा दिया होता। कितना सुन्दर अवसर थ जबकि वह अपना राज्य स्वयं वापस माँगने आये थे।

चन्द—महाराज अनंगपाल के जीवन में बस सबसे बड़ा कलंक यही है कि एक बार तो राज्य का लोभ त्यागकर उन्होंने वानप्रस्थाश्रम स्वीकार कर लिया, फिर उसके बाद स्वार्थी मित्रों के जाल में पड़कर उन्होंने अपने प्रदत्त राज्य के लिए महाराज के सम्मुख भिक्षा का हाथ पसारा। मनुष्य लोभ और मोह में पड़कर अपना गौरव किस सीमा तक भूल जाता है, महाराज अनंगपाल इसके एक जीवित उदाहरण हैं।

पृथ्वीराज—*(हँसते-हँसते)* इसी राज्य-लोभ से प्रेरित होकर उन्होंने शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ौरी से सन्धि करके हमारे ऊपर आक्रमण किया। तृष्णा जो-कुछ न कराये सो थोड़ा है। पराजित हो जाने के बाद भी जब उन्होंने मुझसे सन्धि की तब भी उनके मन में तृष्णा बनी हुई थी। थोड़ा-बहुत राज्यांश वापस मिल जाने पर वह पुनः राज्य-सुख भोगने को तत्पर हुए थे। यह एक तृष्णा ही है चन्द, जो मनुष्य को इतना पतित बना देती है। तुम

पूछते हो, 'मैं उदास क्यों हूँ।' *(एक नि:श्वास लेकर)* मैं जब अपनी ओर देखता हूँ तो लगता है कि यही तृष्णा एक दिन मुझको भी खा जायगी। *(करवट बदल लेते हैं)*

चन्द–लेकिन महाराज ने तो तृष्णा को अपने जीवन में कोई विशेष महत्व नहीं दिया, फिर वह आज इतने विरक्त क्यों हो रहे हैं ?

पृथ्वीराज–मैं जब अपने जीवन की घटनाओं पर एक दृष्टि डालता हूँ तो मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मेरा अब तक का इतिहास मेरे वीर सामन्तों की वीरगाथा-मात्र है। तुमको विदित ही है कि हमारे बीच एक वीर निड्डुरराय भी थे। मुझको अपमानित और पराजित करने के लिए जब जयचन्द मुहम्मद ग़ौरी से मिलकर कोई षड्यन्त्र रचता था तब देश-भक्ति की भावना से प्रेरित होकर यह निड्डुरराय इसका तीव्र विरोध करते थे। इसी का यह फल हुआ कि उन्हें सगे भाई का पक्ष छोड़कर मुझ-जैसे मौसेरे भाई का पक्ष स्वीकार करना पड़ा और तुमको विदित ही है कि वह कन्नौज की लड़ाई में मेरी ओर से अपने भाई बलभद्र के साथ लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुए।

चन्द–यह महाराज की नीतिकुशलता ही थी, जो ऐसे निष्पक्ष वीरों का सहयोग मिला था।

पृथ्वीराज–मुझे ऐसा जान पड़ता है चन्द, महामात्य कैमास के साथ भी मैंने अन्याय किया। उनके अपराध का प्रतिशोध मृत्युदण्ड नहीं होना चाहिए था। आज यदि वह हमारे बीच होते, तो हमें उनका कितना बड़ा बल प्राप्त रहता। इसी प्रकार मैंने वीर चामुण्डराय के साथ भी अन्याय किया।

चन्द–याद है महाराज, मुझे वह दृश्य, जब चामुण्डराय ने कहा था–'अब इन बेड़ियों को निकालने की क्या आवश्यकता है। मैं इसी योग्य हूँ, इसी योग्य हूँ।'

पृथ्वीराज– *(नि:श्वास)* चामुण्डराय की बेड़ियाँ तो कट गईं चन्द, पर अब फिर यदि मुहम्मद ग़ौरी ने आक्रमण किया तो *(आँखों में आँसू भरकर)* मेरी बेड़ियाँ काटने वाला कोई न होगा चन्द, देख लेना।

चन्द–मेरी समझ में नहीं आता, महाराज इतने आशंकाकुल क्यों हो रहे हैं ?

पृथ्वीराज–मुझे अपना भविष्य अब कितना अन्धकारमय दीख रहा है चन्द, तुम नहीं जान सकोगे।

चन्द–महाराज, यही आशंका, यही निराशा मनुष्य की वास्तविक पराजय होती है। युद्ध से पूर्व ही पराजय–बीमारी से पूर्व ही मृत्यु–इसी को कहते हैं।

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी– *(विनत होकर)* घणी क्षमा महाराज।

पृथ्वीराज–कहो, कहो प्रतिहारी !

प्रतिहारी–ग़ज़नी के सुलतान ने एक सन्देश के साथ महाराज के पास अपना दूत भेजा है।

पृथ्वीराज– *(चौंककर)* ग़ज़नी का राजदूत ! भेजो, भेजो।

प्रतिहारी– *(विनत होकर)* जो आज्ञा महाराज।

[प्रतिहारी का प्रस्थान और ग़ज़नी के राजदूत का प्रवेश]

राजदूत– *(तीन बार कोर्निश बजाते हुए, पत्रिका उनके हाथ में देते हुए)* हमारे बादशाह महाराज से तीन चीजें माँगते हैं – १. पैगम्बर के आगे महाराज सिर झुकावें और दोस्ती के लिए पहले अपना हाथ आगे बढ़ावें। २. सतलुज तक पंजाब का आधा राज्य उनकी नज़र करें। ३. अपने बर्ख़ुरदार युवराज रेनसिंह को उनके दरबार में भेजें। अब आगे इन्हीं शर्तों पर हमारे सुलतान दोस्ती का रिश्ता कायम रख सकते हैं।

पृथ्वीराज– *(गम्भीर होकर)* अच्छा, हमको मालूम हो गया। राजदूत, हमारी अतिथिशाला में विश्राम करो। सुलतान के सन्देश का उत्तर कल प्रातःकाल दिया जायगा। प्रतिहारी !

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी– *(विनत होकर)* आज्ञा महाराज।

पृथ्वीराज–ग़ज़नी के राजदूत को सम्मानपूर्वक ठहराओ।

प्रतिहारी– *(विनत होकर)* जो आज्ञा महाराज।

[राजदूत तीन बार झुककर कोर्निश बजाता है और प्रतिहारी के साथ प्रस्थान करता है]

पृथ्वीराज–देख लिया चन्द, तुमने–इसी को भावी कहते हैं।

चन्द–देख लिया महाराज! अब हमारी शक्ति क्षीण हुई देखकर ही ग़ज़नी के सुलतान ने महाराज के पास ऐसा सन्देश भेजा है। पर मेरी विनय है कि अब भी महाराज चिन्ता न करें। जब तक हमारे बीच वीर चामुण्डराय, समरसिंह रावल, जैतराव परमार तथा पावस पुण्डीर आदि योद्धा विद्यमान हैं तब तक महाराज के लिए चिन्ता का कोई कारण नहीं है।

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी–*(विनत होकर)* घणी क्षमा महाराज! सम्राट् से मिलने के लिए वीर चामुण्डराय और समरसिंह रावल पधारे हैं।

पृथ्वीराज–उनकी आयु बड़ी है। तुरन्त हमारे पास भेजो।

प्रतिहारी–जो आज्ञा महाराज।

[प्रतिहारी का विनत होकर प्रस्थान। चामुण्डराय तथा समरसिंह रावल का प्रवेश]

चामुण्डराय–सम्राट् की जय हो। कविराज को अभिवादन है।

समरसिंह रावल–महाराज की जय हो। कविराज को सादर प्रणाम है।

पृथ्वीराज–आओ बन्धुवर! कहो, चित्त तो प्रसन्न है?

चामुण्डराय–जब महाराज उद्विग्न हों, तब मेरा चित्त प्रसन्न कैसे रह सकता है।

पृथ्वीराज–मुझे ऐसा जान पड़ता है चामुण्डराय, जैसे सिंह के दो-तीन दाँत टूट गये हैं, नख घिस गये हैं, भुजाओं में भी वह बल–वह स्फूर्ति नहीं, जो शत-शत ऐरावत हाथियों के लिए भय का कारण बन जाती थी। *(चन्द की ओर देखते हुए)* ग़ज़नी के सुलतान का सन्देश दिखलाओ न चन्द इनको! *(नि:श्वास)* परीक्षा का समय निकट आ गया है। बलिदान की भूखी भूमि तत्काल अपना प्रतिशोध चाहती है।

[चन्द ग़ज़नी के सुलतान का पत्र चामुण्डराय के सामने रख देते हैं और वह तथा समरसिंह रावल उसे देखते हैं–तभी चामुण्डराय बोल उठते हैं]

चामुण्डराय– *(आवेश में आकर)* पढ़ लिया सन्देश मैंने महाराज। साथ ही यह भी देख लिया कि शत्रु के साथ दया करने का क्या परिणाम होता है।

पृथ्वीराज– *(गम्भीर होकर)* बार-बार मेरी त्रुटियों को भाले की नोक वना-बनाकर मेरे ही भाल पर मारने की चेष्टा मत करो चामुण्डराय। पृथ्वीराज का सद्व्यवहार पृथ्वीराज के साथ जायगा, मुहम्मद ग़ौरी का मुहम्मद ग़ौरी के साथ।

चामुण्डराय– *(सिर उठाकर)* तो फिर बलिदान की भूखी भूमि को उसका आहार दिया जायगा महाराज! चामुण्डराय अपने जीवन की अन्तिम साँस तक इन शर्तों के आगे झुकने को तत्पर न होगा। मेरी सम्मति में ग़ज़नी के सुलतान को एक वाक्य में यही लिख दिया जाए कि शूरवीर ऐसी बातों का उचित उत्तर तो समर-भूमि में ही देते हैं।

समरसिंह रावल–बस-बस, यही उत्तर समुचित होगा महाराज।

पृथ्वीराज– *(नि:श्वास)* अच्छी बात है बन्धुओ! ऐसा ही होगा।...आज से मैं भूमि पर सोऊँगा। वीरगति प्राप्त होने पर जिस भूमि में सबसे अधिक सुख की नींद आती है उसी भूमि पर। प्रतिहारी!

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी– *(विनत होकर)* आज्ञा महाराज।

पृथ्वीराज–देखो, महामात्य क्या कर रहे हैं। पूजन कर चुके हों तो कहना–अन्त में युद्ध के देवता का भी आह्वान कर लें। चन्द, मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जिसकी स्मृति स्थायी हो जाती है, उसका मरण कभी नहीं होता। देह त्याग देने पर भी उसकी अमर ज्योति सदा ज्योतिर्मय बनी रहती है।

[विनत होकर प्रतिहारी का प्रस्थान। चामुण्डराय तथा समरसिंह रावल महाराज पृथ्वीराज की ओर देखते हैं]

चन्द–बस महाराज, यही, यही एक विश्वास युद्ध में विजयी बनाता है।

[यवनिका गिरती है]

नवम दृश्य

स्थान—दिल्ली : महारानी संयोगिता का राजभवन।

समय—रात्रि लगभग बारह बजे (१५ अगस्त सन् ११९३ ई०)

[दृश्य—पूर्ववत्]

संयोगिता—बस, बस, उसी प्रेमांकुर की पत्नी ने मुझे सम्राट् का यह चित्र पहले-पहल दिखलाया और फिर मेरा आग्रह पाकर मुझे भेंट कर दिया था। एक सहस्र स्वर्ण-मुद्राओं का मूल्यवान् हार जब मैंने उसे पुरस्कार में दिया तो जानते हैं, उसने क्या उत्तर दिया महाप्राण ?

पृथ्वीराज—*(उत्सुकता से)* हाँ, क्या उत्तर दिया ?

संयोगिता—उसने उत्तर दिया—'राजकुमारी चाहे जो कुछ दे डालें, किन्तु अमूल्य वस्तु का मूल्य वह कभी न दे पायेंगी।'

पृथ्वीराज—*(मुस्कराते हुए)* अमूल्य वस्तु का मूल्य! बहुत सुन्दर उत्तर दिया उसने। अपने स्वामी प्रेमांकुर से भी अधिक चतुर थी वह नारी।

संयोगिता—यह मैं क्या जानूं। मुझे तो कभी प्रेमांकुर से मिलने का अवसर मिला नहीं महाप्राण!

पृथ्वीराज—महारानी को कुछ ध्यान नहीं रहता। उन्हें इतना ध्यान भी नहीं रहता कि वह क्या कह रही हैं। उनके प्रेमपाश का बन्दी बने हुए मुझे धीरे-धीरे छः मास हो चुके, फिर भी वह ऐसा उपालम्भ दे रही हैं कि उन्हें प्रेमांकुर से मिलने का अवसर अब तक नहीं मिला।

संयोगिता—प्रेम की ही बात लें, तो पराजित होने पर भी, अपने को अंकुर मात्र समझते हुए महाप्राण मुझे लज्जित कर रहे हैं।

[पुरुष-वेश में नारी प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी—*(विनत होकर)* घणी क्षमा महाराज!

पृथ्वीराज—*(गम्भीर होकर)* क्या है ?

प्रतिहारी—राजपुरोहित गुरुराम के साथ महाकवि चन्द महाराज से मिलने आये

हैं। और उन्होंने यह परचा भेजा है। *(परचा देती है)*

पृथ्वीराज– *(परचा हाथ में लेकर देखते-देखते भृकुटियाँ तन जाती हैं, फिर प्रतिहारी की ओर देखकर)* देख लिया, जाओ।

[प्रतिहारी जाने लगती है]

पृथ्वीराज– *(परचा संयोगिता के हाथ में देकर प्रतिहारी से)* ठहरो!

संयोगिता– *(परचा पढ़ती है)* इधर महाराज ग़ौरी के ध्यान में हैं, उधर ग़ौरी महाराज पर आक्रमण करने के ध्यान में है।

पृथ्वीराज– *(परचा संयोगिता के हाथ से छीनकर फाड़ते हुए, प्रतिहारी से)* उनसे कहो मैं अभी आया।

[प्रतिहारी का प्रस्थान। महाराज तुरन्त पार्श्ववर्ती कक्ष में जाकर युद्ध के वस्त्राभरण धारण करने लगते हैं। रानी संयोगिता भी वहीं जा पहुँचती हैं]

संयोगिता– *(आँखों में आँसू भरकर)* दस-पाँच वर्ष भी शान्ति और सुख के साथ महाराज मेरे साथ नहीं व्यतीत कर पाये और *(आँसू पोंछकर एक निःश्वास के साथ)* युद्ध आ पहुँचा। महाराज पुनः युद्ध को चल दिये।

पृथ्वीराज–ऐसा ही होता है संयोग की रानी। कर्तव्य के कठोर बन्धन में बँधा हुआ प्राणी ऐसा ही विवश और विपन्न होता है। यह दिन फिर लौटकर नहीं आयेगा, जानता हूँ। यह रात लौटकर फिर नहीं आयेगी, यह भी जानता हूँ, फिर भी जैसे महाकाल किसी को एक क्षण का भी अवकाश नहीं देता, वैसे ही युद्ध भी एक क्षण का विलम्ब क्षमा नहीं करता। रोओ नहीं संयोगिता! संयोग की रानी को वियोग की घड़ियों में भी आँसू नहीं बहाना चाहिए।

संयोगिता– *(सिसकियाँ लेती हुई)* मैं यही सोचती हूँ, महाराज कि मैं...मैं यहाँ इतने बड़े राजप्रासाद में अकेली रहूँगी कैसे! मैं अकेली नहीं रहूँगी—मैं अकेली नहीं रहूँगी। युद्ध के लिए मुझे भी अपने साथ लेते चलें प्राणनाथ!

पृथ्वीराज– *(कन्धे पर धनुष रखते हुए)* नहीं संयोगिता, ऐसा नहीं होगा। सदा की भाँति मैं इस बार भी शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ौरी को बन्दी बनाकर छोड़ूँगा। इस बार तो मैं उसको एक पाठ पढ़ाकर मानूँगा। मैं उससे स्पष्ट कह दूँगा—जीना है तो गौरव के साथ जीवित रहना सीखो ग़ज़नी के

सुलतान। उस श्वान की भाँति नहीं, जो निकट रहने पर तो मुँह ऊपर करके पूंछ हिलाता है और दूर से देखता है तो भौंकना प्रारम्भ कर देता है।

संयोगिता– *(आँसू पोंछती हुई)* न जाने क्यों...न जाने क्यों आज मेरा जी घबरा रहा है। कोई नहीं जान सकता कि कब क्या होगा! जानती हूँ कि आशा जीवन के साथ है। यह भी जानती हूँ कि आशा जीवन-रक्षा का सम्बल है, किन्तु कैसे कहूँ प्राणनाथ, कि वही आशा कभी-कभी प्रवञ्चना भी बन जाती है। भगवान् न करे कि मेरी आशा मेरे साथ वञ्चना करे, किन्तु यदि यह होनहार है, तो मैं महाराज को इस प्रासाद में नहीं, स्वर्ग के द्वार पर मिलूंगी–अमर वल्लरियों के सुरक्षित गालञ्च में महाप्राण के स्वागत के लिए जा पहुँचूंगी।

पृथ्वीराज–संयोग की रानी को ऐसे वियोग की कल्पना करके अपनी दुर्बलता नहीं प्रकट करनी चाहिए। जीवन मंगलमय है तो कर्तव्य की वेदी पर जीवन का उत्सर्ग भी मंगलमय ही है संयोगिता। पृथ्वीराज एक ग़ज़नी के सुलतान के सामने तो क्या, यमराज के सामने की क्षमा की भीख न माँगेगा, न पराजय स्वीकार करेगा।

संयोगिता– *(निःश्वास के साथ)* भगवान् करे कि महाराज विजय करके ही लौटें। किन्तु युद्ध के समय महाराज मुझको भूल जायँ–सदा के लिए भूल जायँ। एक पल, एक क्षण के लिए भी मेरी चिन्ता न करें। *(सिसकियाँ लेती है)*

पृथ्वीराज– *(पीठ पर तरकस, कमर में कृपाण और हाथ में भाला लेते हुए मुस्कराकर)* बचपन में युद्ध, किशोर वय में युद्ध, मिलन में युद्ध, संयोग में युद्ध, वियोग में युद्ध, पृथ्वीराज का दूसरा नाम ही युद्ध है। *(सुनयना और वीणा को सोने के थाल में फूलों की माला और तश्तरियों में दही, हरिद्रा, अक्षत तथा नैवेद्य के साथ आता हुआ देखकर)* उसकी प्रत्येक यात्रा विजय-यात्रा रही है।

संयोगिता– *(तिलक करती, हार पहनाती और नैवेद्य का ग्रास मुंह में रखती हुई)* तमसो मा ज्योतिर्गमय। भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम्।

[महाराज पृथ्वीराज प्रस्थान करते हैं, और संयोगिता मूर्छित होकर गिर पड़ती है। यवनिका गिरती है]

दशम दृश्य

स्थान—ग़ौरी के दुर्ग का बन्दीगृह।

समय—रात्रि।

[महाराज पृथ्वीराज शृंखलाओं में बंधे पड़े हैं। कभी निःश्वास लेते हैं और कभी बैठे-बैठे सिसकने लगते हैं। आँसुओं की बूंदें बहते-बहते बढ़ी हुई दाढ़ी पर आकर अटक जाती हैं। तातारख़ाँ के साथ हँसते हुए मुहम्मद ग़ौरी प्रवेश करता है, तभी यवनिका उठती है]

मुहम्मद ग़ौरी—हा, हा, हा, हा! कहो सम्राट्! कैसा मिज़ाज है ?

पृथ्वीराज—मिज़ाज का हाल पूछते हैं सुलतान! *(आँखों में आँसू आ जाते हैं और कण्ठ भर आता है)* मिज़ाज विजेता का होता है, स्वाधीन द्रोही का होता है। पराधीन द्रोही के मिज़ाज की कौन परवा करता है। याद है वह दिन जब सुलतान ने इसी मुख से कहा था—'इन्सान मर जाता है मगर इन्सानियत[१] क़ायम[२] रहती है।' मैंने एक-दो बार नहीं ग्यारह बार सुलतान को क्षमा किया, ग्यारह बार! पर वह मुझको मानवता के नाम पर एक बार भी नहीं छोड़ सकता। 'इन्सान मर जाता है, पर इन्सानियत क़ायम रहती है'—सुलतान की यही इन्सानियत है ?

मुहम्मद ग़ौरी—इन्सानियत के सवाल को उठाकर कैदखाने से छूटने की उम्मीद रखने वाले सम्राट्! होश की दवा कर! मैंने क्या कहा था और तुमने क्या किया था—इन बातों का फैसला तवारीख़[३] के हाथों में चला गया। अब इसके बारे में न तुमको कुछ कहने का हक़[४] है न मुझको।

पृथ्वीराज—औचित्य के आगे मुँह छिपाने की चेष्टा मत करो सुलतान। यह मत कहो कि यह अधिकार अब हमारे हाथ में नहीं है। जब तक मेरे हाथ में यह अधिकार रहा, तब तक मैंने बराबर इसकी रक्षा की। मैंने अपने अन्तःकरण

---

१. मानवता २. स्थिर ३. इतिहास ४. अधिकार

के स्वर की रक्षा की, न्याय की रक्षा की, मानवता की रक्षा की और सुलतान हमारे घर की फूट से लाभ उठाकर, इन्सानियत की रक्षा नहीं कर सकते ?

मुहम्मद ग़ौरी—सम्राट् को तब ख़याल आया है घर की फूट का, जब उन्हें क़ैदख़ाने की मेहमानदारी का मौक़ा दिया गया।

पृथ्वीराज—आँखों में धूल झोंकने की कोशिश मत करो सुलतान। घर की फूट ही नहीं, मैंने सुलतान को बार-बार छोड़कर बाहर की फूट को मिटाने की क्या कम चेष्टा की ? पृथ्वीराज और मुहम्मद ग़ौरी के बीच होने वाली लड़ाइयों के इतिहास का पन्ना-पन्ना हमारी जिन वीरगाथाओं में रंजित होगा, सुलतान चाहते तो उसके अन्त में उनका नाम भी सोने के अक्षरों में लिखा जा सकता था।

मुहम्मद ग़ौरी—शादियाँ करते-करते और लड़ाइयाँ लड़ते-लड़ते सम्राट् अधेड़ हो गये, मगर अफ़सोस की सियासत [१] का पहला सबक़ [२] भी उनको नसीब न हुआ। वह इतना भी न जान सके कि जो बहादुर तवारीख़ के मज़मून [३] बनते हैं, वे उनकी सुर्ख़ियों [४] की परवाह नहीं करते।

पृथ्वीराज—परवाह तो ऐसी करते हैं कि घुटने टेक-टेककर हाथ जोड़ते और हा-हा खाते हैं। विजेता बन जाने के बाद ही वे बातें आज भूल गये सुलतान।

मुहम्मद ग़ौरी—वक्त-वक्त की बात है। कभी जीत तुम्हारे हाथ में थी आज हमारे हाथ में है। तुमने हमको छोड़कर दुनियाँ में जो वाहवाही लूटी, हम उसकी क़द्र करते हैं। तुमने हम पर मेहरबानियाँ कीं, हम उनको मानते हैं। मगर साथ में यह भी मानते हैं कि वे मेहरबानियाँ सियासी मामलों में उस वक्त अपनी कोई क़ीमत नहीं रखतीं, जब अन्दर रहम का ख़याल न होकर नापाक ख़ुदी [५] का ख़याल होता है। इसलिए मैं चाहता हूँ—तवारीख़ का पन्ना-पन्ना बतलाये कि दिल्ली के सम्राट् ने छः बार ग़लती की, और ग़ज़नी के सुलतान ने एक बार भी ग़लती नहीं की।

---

१. राजनीति २. पाठ ३. विषय ४. शीर्षक ५. पापमय स्वार्थ

पृथ्वीराज– *(सिर हिलाकर, व्यंग्य के साथ)* ग़लती नहीं की! *(एक लम्बी नि:श्वास लेकर)* सदा ये दिन न रहेंगे सुलतान। एक दिन तुम भी मरोगे। एक दिन तुम्हारे इसी सिर के बाल पकड़ कर मौत तुम्हें महलों के भीतर से घसीट ले जायगी! काल जब तुम्हारा कलेजा चीर देगा, तब तुम मुँह बनाकर रह जाओगे। विष उगलने वाली यह ज़बान बन्द हो जायगी। सुलतान को यह कहते हुए शर्म नहीं आई कि छः बार उनको क्षमा कर मैंने ग़लती की! शरणागत की रक्षा करना, और क्षमा की भीख माँगने वाले को कभी निराश न करना, पृथ्वीराज आज तक अपना धर्म समझता रहा है। *(होंठ भींच लेते हैं)*

मुहम्मद ग़ौरी–बको मत दिल्ली के सम्राट्! सियासत के मामले में मैं मज़हब[१] का कोई असूल नहीं मानता। मज़हब और चीज़ है, सियासत और चीज़।

पृथ्वीराज– *(गरजकर)* चुप रहो, सुलतान! *(थोड़ा मन्द पड़कर)* पहले कुछ पढ़ो, तब बहस करना। राजनीति और धर्म आपस में भाई-बहन के समान हैं; जैसे एक गाड़ी के दो पहिये। *(उच्च स्वर से)* मैं उस शासन-व्यवस्था को कोई महत्व नहीं देता, जो धर्म और संस्कृति पर आधारित नहीं है। मैं उस राजनीति पर विश्वास नहीं करता जो मानवता की हत्या कर मनुष्य को पिशाच बना डालती है। मैं उस इन्सान को इन्सान नहीं समझता, जो अवसर से अनुचित लाभ उठाकर सफल और विजयी होने का ढिंढोरा पीटता है। मैं अपनी इस हार को हार नहीं मानता। मानव-धर्म की रक्षा में अगर मेरे प्राण इसी समय समाप्त हो जायें, तो भी मैं अपने को विजयी समझूँगा। मुझे इस कारागार में पड़े-पड़े मर जाने दो सुलतान। कभी यह मत सोचो कि मैं तुमसे दया की भीख माँग सकता हूँ। हट जाओ मेरे सामने से! तुम्हारे जैसे पामर, नीच और दग़ाबाज़ लोगों से बहस करना मैं स्वाभिमान के विरुद्ध समझता हूँ।

मुहम्मद ग़ौरी–तातारख़ाँ, सम्राट् का दिमाग़ ख़राब हो गया है, मुझे इसकी फ़ौरन दवा करनी पड़ेगी। जाओ, लोहे की सीख़ों से इसकी आँखें फोड़ देने

---

१. धर्म

का इन्तज़ाम करो।

तातारख़ाँ—जो हुक्म जहाँपनाह!

[मुहम्मद ग़ौरी और तातारख़ाँ कारागार से बाहर जाने लगते हैं]

पृथ्वीराज— *(एक निःश्वास लेकर)* देख रहे हो परम पिता! तुमने जिनको जनता की सेवा करने का अवसर दिया, वही आज भोग और लिप्सा के नाम पर दानवता का परिचय दे रहे हैं। *(आँखें अन्तरिक्ष की ओर उठ जाती हैं)* साथ में यह भी देख लो कि तुम्हारा एक पुत्र ऐसी नारकीय यन्त्रणाएँ भी हँसते-हँसते सह लेता है। *(दोनों हाथ जुड़कर माथे से लग जाते हैं और पलकें बन्द होने लगती हैं)* मुझे शक्ति दो परम पिता! बल दो! इतना साहस दो कि मैं इस प्राणान्तक वेदना को भी वही मूल्य दूं, जो एक चींटी के काट लेने का होता है।

[यवनिका गिरती है]

एकादश दृश्य

स्थान—ग़ौर का दुर्ग।

समय—सायंकाल।

[महाराज पृथ्वीराज का शरीर शृंखलाओं में जकड़ा हुआ है; हथकड़ियाँ पड़ी हैं। औंधे मुँह वह भूमितल पर लेटे हुए हैं। सिर के केश रूखे और बिखरे, वस्त्र मलिन, और दाढ़ी बढ़ी हुई। हाथों के अतिरिक्त मुंह पर भी दाह-चिह्न झलकते हैं। घुटनों पर चूड़ीदार पायजामा घर्षण से फटा हुआ जान पड़ता है। उसके ऊपर भी रक्त की रेखाएं अंकित हैं।

महाकवि चन्द पृथ्वीराज से दस गज की दूरी पर खड़े हैं। उनके पास एक सिपाही नियुक्त है। वेशभूषा साधु की-सी है। मुख पर दुःख की श्याम छाया अंकित है। दृष्टी में भय, मुद्रा में आशंका और चेष्टा में स्फूर्ति के स्थान पर शैथिल्य है। वह जब महाराज के निकट आने को आतुर हो उठते हैं तब सिपाही उन्हें रोक देता है। निकट आने की चेष्टा में ज्योंही वह अपना पैर आगे बढ़ाने लगते हैं त्योंही यवनिका उठती है]

चन्द—महाराज! *(उत्तर न मिलने पर थोड़ा रुककर)* महाराज, मैं आ गया।

पृथ्वीराज—कौन? *(सिर उठाकर खोखली आँखों से चन्द की ओर देखते हुए)* यह किस ने मुझे महाराज कहकर पुकारा? स्वर चिरपरिचित-सा जान पड़ता है।...किन्तु...किन्तु चन्द तो तुम हो नहीं सकते। *(निःश्वास के साथ)* काश! वह जीवित होता।

चन्द—*(आर्द्र कण्ठ से)* मैं...मैं चन्द ही हूँ महाराज, जीवित हूँ—महाराज को इस विपन्नावस्था में देखने के लिए अभी जीवित हूँ। उस देशद्रोही हम्मीरराय ने मुझे देवी के मन्दिर में बन्द कर दिया था। किसी तरह भाग कर अब आ पाया हूँ। किन्तु *(आँसू पोंछता हुआ)* कितना अच्छा होता, महाराज को इस दुरावस्था में देखने से पूर्व मृत्यु मुझे अपने नाश-पाश में बद्ध कर लेती।

पृथ्वीराज—*(निःश्वास लेकर)* नहीं चन्द, यह अच्छा हुआ कि तुम आ गये। कम-से-कम इतना तो देख ही लोगे कि मनुष्य...मनुष्य अपने पापों का फल इसी जीवन में भोग लेता है।...आह! *(आँखों पर हाथ रखकर*

कराहने लगते हैं)

चन्द—महाराज ने कोई ऐसा पाप नहीं किया, जिसका यह फल उन्हें भोगना पड़ रहा है। मानव-सभ्यता के इतिहास में अपने ढंग का यह प्रथम निर्मम और जघन्य कृत्य है, जो एक साधारण बादशाह के द्वारा महाराज-जैसे महापुरुष के साथ हुआ है। मुझे आश्चर्य तो इसी बात का है कि महाराज इसे सहन कैसे कर सके!

पृथ्वीराज—कैसे सहन कर सका, यह मत पूछो चन्द! यह बात पूछने की नहीं, केवल अनुभव करने की है। स्मरण आ रहा है वह दिन जब आखेट के लिए पानीपत गया था। उसी समय, पता नहीं कैसे, मेरा एक बाण एक व्याघ्र की दाईं आँख में जा लगा। मेरी इन खोखली आँखों का रक्त तो अब सूख गया है पर व्याघ्र की उस बाण-विद्ध आँख का बहता हुआ रक्त मुझे दिखाई पड़ रहा है। ऐसा भी जान पड़ता है चन्द कि व्याघ्र के मरण-काल की उसी यन्त्रणा का यह दारुण प्रतिशोध नियति ने मेरी दोनों आँखें निकलवा कर मुझ से ले लिया हो। उसी नियति ने, जिसकी मुट्ठी में मनुष्य-जीवन का क्षण-क्षण रहता है। *(भावावेश में काँपने लगते हैं)*

चन्द—सम्भव है महाराज! ऐसा ही हो। अमानुषीय हिंसा का कोई कृत्य व्यर्थ नहीं जाता। सृष्टि किसी-न-किसी ढंग से उसका प्रतिशोध लेकर ही मानती है। जो भी हो, इससे यह तो सिद्ध हो ही गया कि महाराज सुख-भोग में जैसे अतुलनीय रहे हैं, दुःख-सहन में भी वैसे ही कठोर। महाराज सब प्रकार से महान् हैं।

पृथ्वीराज— *(निःश्वास)* मुझे महान् मत कहो चन्द—मुझे महाराज भी मत कहो। सम्राट् पृथ्वीराज जब ग़ौर के सुलतान का एक क्षुद्र बन्दी है, तब उसकी महत्ता का मूल्य ही क्या है!

चन्द—महत्ता का मूल्य, महाराज, केवल सुख-सौभाग्य से नहीं आँका जाता। उसकी परीक्षा तो तब होती है जब मनुष्य नाना संकटों से घिरकर अपनी समस्त शक्ति से वंचित हो जाता है।

पृथ्वीराज—मैं भी शक्ति-सामर्थ्य से नितान्त हीन हो गया हूँ चन्द! अब किसी

परीक्षा के योग्य नहीं रहा। केवल लौ जल रही है—लौ, दीपक बुझना चाहता है। उफ़! संयोगिता से कह देना...।

चन्द—महाराज! संयोगिता ने प्राण त्याग दिये! अन्य रानियाँ भी सती होकर स्वर्ग सिधार गईं!

पृथ्वीराज—वाह! यह तो तुमने बहुत सुखद समाचार सुनाया है। हे भगवान्...! *(खोखली आँखों में आँसू भर आते हैं और कण्ठ रुद्ध हो उठता है)*

चन्द—महाराज का कण्ठ रुँध रहा है, पानी पी लीजिए। प्रतिहारी! महाराज को पानी पिलाओ।

पृथ्वीराज—*(सँभलकर)* नहीं चन्द! मुझे अब प्यास नहीं लगती। एक प्यास ही तो है, जिसके वशीभूत होकर—केवल पैंतालीस वर्ष की अवस्था में मैं अपने जीवन का सन्ध्याकाल देख रहा हूँ। किन्तु अब सब व्यर्थ है। प्रायश्चित्त व्यर्थ है। पश्चात्ताप व्यर्थ है। दुःख, जलन, उत्ताप, सब व्यर्थ हैं। अब तो केवल मृत्यु ही मुझे शान्ति दे सकती है। लाओ चन्द, अपनी कृपाण मुझे दे दो।

चन्द—निकट आना मना है महाराज! तभी तो दस गज़ की दूरी से बात कर रहा हूँ। इसके अतिरिक्त कृपाण कारागार के द्वार पर ही रखवा ली गई थी।

पृथ्वीराज—द्वार पर ही रखवा ली गई! आह! *(हाँफते हुए)* फिर?...फिर क्या किया जाय चन्द? कोई उपाय बतलाओ, कोई ऐसा उपाय बतलाओ कि क्षणमात्र में मैं इस संसार से विदा हो जाऊँ। विदा मिलन की भूमिका है। चन्द, मुझे विदा दो। मैं अब विदा चाहता हूँ।

चन्द—*(छिपा हुआ कटार निकालते हुए)* महाराज, यह कटार मैंने अपने आत्मघात के लिए छिपाकर रख छोड़ी थी।

पृथ्वीराज—तो बस, इसी को मुझे दे दो चन्द! आज तक मैंने तुमसे कोई वस्तु नहीं माँगी। मेरी यह पहली और अन्तिम माँग है। दे दो चन्द, जल्दी करो। मैं अब एक क्षण के लिए भी इस संसार में नहीं रहना चाहता। जहाँ इतना छल और प्रपंच है—जहाँ केवल अहम् की तुष्टि के लिए एक आदमी दूसरे

आदमी को श्वान बना डालता है।

चन्द–लीजिए।

[कटार देने के लिए ज्योंही चन्द आगे बढ़ते हैं, त्योंही खट से मुहम्मद ग़ौरी का हाथ उसकी बाहु पर जा लगता है और कटार गिर जाती है]

मुहम्मद ग़ौरी–क़ैदखाने में मुलाक़ात के बहाने आकर ख़ुदकशी कराने की साज़िश! फ़क़ीर बनने वाले शायर के अन्दर इतनी चालबाज़ी! शर्म की बात है।

चन्द–*(मुस्कराकर)* जहाँपनाह को भ्रम हो रहा है। वह नहीं जानते कि इसी क्षण के लिए महाराज ने मेरे एक वचन का पालन रोक रक्खा था।

मुहम्मद ग़ौरी–तो यह क्यों नहीं कहा कि कोई इक़रार था, उसी की तामील के लिए आये हो। ख़ैर, कोई हर्ज नहीं। बोलो, इक़रारनामे की शर्तें क्या थीं।

चन्द–जहाँपनाह, हमारे महाराज शब्द-वेधी बाण-विद्या जानते हैं। पर आज तक इन्होंने यह मुझे नहीं दिखलाई।

मुहम्मद ग़ौरी–क्या मतलब?

चन्द–मतलब यह कि जहाँ कहीं आवाज़ सुनाई पड़ेगी, महाराज का बाण उसी क्षण उसी स्थान को वेध देगा।

मुहम्मद ग़ौरी–*(आश्चर्य से)* सच! आँखों का अन्धा तीर मारेगा! *(हँसता है)*

चन्द–जहाँपनाह! यह विद्या ही ऐसी है, जिसमें आँख की आवश्यकता ही नहीं पड़ती, केवल स्वर का सहारा रहता है।

मुहम्मद ग़ौरी–मज़ाक बुरा नहीं है। अच्छा मंजूर। लेकिन शर्त यह है कि तमाशा दिन में नहीं–चार बजे रात को दिखाना होगा।

चन्द–जिस समय जहाँपनाह देखना चाहें उसी समय हो सकता है। चाहें, तो इस समय भी हो सकता है।

मुहम्मद ग़ौरी–नहीं; बस रात को चार बजे। क्यों सम्राट्, रस्सी जल गई, मगर उसका बल न गया! अब तक यह हौसला क़ायम है कि एक तरकीब और

सही ! हा: हा: हा: हा: !

पृथ्वीराज—अगर इस समय भी मेरे हाथ में धनुष-बाण होता, तो तेरे इस परिहास का उत्तर अब तक मिल चुका होता !

मुहम्मद ग़ौरी—मगर होता कैसे ! मालूम है, गंजे को ख़ुदा नाख़ून नहीं देता। अहमदख़ाँ !

[चन्द पैर का अंगूठा दबाकर उत्तर न देने का संकेत करते हैं। फलत: पृथ्वीराज चुप रह जाते हैं। अहमदख़ाँ सिपाही का प्रवेश]

अहमदख़ाँ—*(कमर तक सिर झुकाकर)* हुक्म जहाँपनाह !

मुहम्मद ग़ौरी—क़ैदखाने में लाल मिर्चों का इतना धुआँ जारी रक्खो कि क़ैदी झपकी न ले पाये।

अहमदख़ाँ—जो हुक्म जहाँपनाह !

मुहम्मद ग़ौरी—चलो, निकलो फ़कीर शायर। मिलने का वक़्त गुज़र गया।

चन्द—मगर हुज़ूर से मिलने का समय अभी थोड़ा बाकी है।

[मुहम्मद ग़ौरी के साथ महाकवि चन्द का प्रस्थान। कारागार का फाटक बन्द होने के साथ-साथ यवनिका गिरती है]

(दृश्यान्तर : उपसंहार)

[मुहम्मद ग़ौरी अपने महल में तातारख़ाँ आदि सरदारों के साथ छज्जे के ऊपर मसनद लगाये विराजमान है। महल के भीतर से शमादान का मन्द प्रकाश आ रहा है। मन्द प्रकाश में भीतर-बाहर सहस्रों स्त्री-पुरुष नागरिक तथा बेगमें झरोखे में आँखें गड़ाये तमाशा देखने को आतुर हैं। महाकवि चन्द महाराज पृथ्वीराज को साथ लेकर रंगशाला में पहुंच रहे हैं—यवनिका उठती है]

पृथ्वीराज—मेरा हृदय आज धक्-धक् कर रहा है, चन्द ! असफलता ही नरक का द्वार है। कहीं ऐसा न हो कि दुर्भाग्य के फेर से अन्त में भी असफलता हाथ लगे।

चन्द—संकट-काल का प्रत्येक क्षण दुर्भाग्य का नहीं होता महाराज, और अन्तिम

सफलता तो शत-शत असफलताओं का मुँह काला कर देती है।

मुहम्मद ग़ौरी–हाँ, अब क्या देर है शायर ?

चन्द–देर कुछ नहीं है जहाँपनाह ! बस, अब तीर-कमान पहुँचाये जायें और आज्ञा दी जाय।

[मुहम्मद ग़ौरी के पास से धनुषबाण आते हैं, किन्तु पृथ्वीराज जब उनकी परीक्षा करते हैं, तभी वे टूट जाते हैं। उपस्थित भीड़ से हर्षध्वनि आने लगती है]

चन्द–जहाँपनाह ! यह कमान तो बहुत हल्की निकलीं। कोई भारी कमान भेजें, जो महाराज के योग्य हो।

[तब मुहम्मद ग़ौरी वह तीर-कमान देता है, जिसके द्वारा सरदार ने पृथ्वीराज को पकड़ लिया था। उस कमान को प्राप्त कर पृथ्वीराज अपना मस्तक झुकाते हैं। तीन बार उसका चुम्बन करके फिर उसे हृदय और कण्ठ से लगाते हैं। यह दृश्य देखकर मुहम्मद ग़ौरी आश्चर्यचकित हो उठता है]

चन्द–जहाँपनाह ! काम तो होगा, मगर पूरा आनन्द तभी आएगा, जब महाराज की ही कमान उन्हें दे दी जाय।

तातारख़ाँ–हुज़ूर, इस भाट के बहकावे में बिल्कुल न आयें। अन्धे महाराज को उसकी अपनी कमान हर्गिज़ न दें। यों ही उसका मिज़ाज क़ाबू से बाहर रहता है। अपनी कमान वापस पाकर न मालूम क्या तूफ़ान बरपा कर दे।

मुहम्मद ग़ौरी–नहीं, नहीं, उसकी कमान उसे देने में कोई हर्ज नहीं। एक तो अन्धा दूसरे अँधेरा। इतमीनान रखो, कहीं कुछ न होगा। मुझ को सिर्फ़ फ़कीर शायर का इक़रारनामा देखना है।

[ज्योंही पृथ्वीराज को उन्हीं का धनुष-बाण दिया जाता है, त्योंही वे उसे बारम्बार चूमते, हृदय और कण्ठ से लगाते हैं]

चन्द–*(चुपके से पृथ्वीराज के पास खिसककर)* बस, सुलतान आज्ञा देने ही वाला है। सावधानी से धनुष धारण करें। एक तीर से सातों तवों को एक-साथ फोड़ते हुए शब्द-वेध करें। विजय ही जीवन है।

मुहम्मद ग़ौरी–अल्लाह...! *(उच्चारण के साथ मुँह खोलता है)*

चन्द– चार हाथ चौबीस गज़
अंगुल अ़ष्ट प्रमान।
ऐते पर सुलतान है
मत चुक्के चहुआन।।

[मुहम्मद ग़ौरी 'अल्लाह' शब्द-कथन में मुँह फैलाकर रह जाता है। उधर चन्द के संकेतानुसार महाराज पृथ्वीराज का बाण घड़ियाल वेध करता मुहम्मद ग़ौरी का तालू फोड़कर भेजा चीरता हुआ निकल जाता है। सुलतान के प्राणान्त पर कोलाहल !]

[यवनिका गिरती है]